मूल्य : रु. ६/-
अंक : १७६
अगस्त २००७
संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
ऋषि प्रसाद
हिन्दी
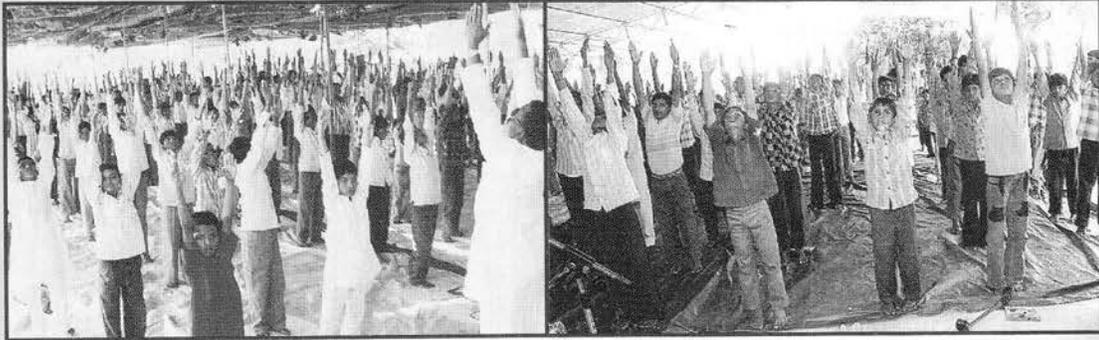
योगासन द्वारा अपनी मानसिक, बौद्धिक व शारीरिक शक्ति का विकास करते विरेगाँव जि. जालना (महा.) तथा थराद जि. बनासकांठा (गुज.) के विद्यार्थी।

भगवन्नाम संकीर्तन करते-करते पूज्य बापूजी के पावन संदेशों को जन-जन तक पहुँचाते हुए खजरी, छिन्दवाड़ा (म.प्र.) के विद्यार्थी व गंगा-दशहरा के पर्व पर जप, कीर्तन के बाद प्रसाद बाँटते दादरी जि. गौतमबुद्धनगर (उ.प्र.) के भक्त।
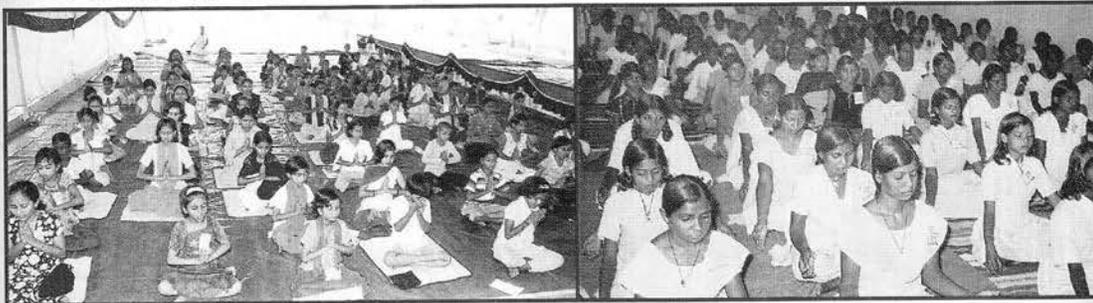
'हम बच्चे बाल संस्कार के, हम प्यासे प्रभु के प्यार के'... प्रार्थना में तल्लीन बदलापुर जि. थाने (महा.) व ध्यान की गहराइयों में प्रभुप्रेम के दिव्य रसामृत का आस्वादन करती कुडेली जि. कोरिया (छ.ग.) की छात्राएँ।

विभिन्न प्रकार के प्राणायामों द्वारा तन-मन को स्वस्थ एवं बुद्धि को कुशाग्र बनाने का अभ्यास करती लखनऊ (उ.प्र.) तथा भुवनेश्वर जि. खुर्दा (उड़ीसा) की छात्राएँ ।

ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

वर्ष : १८ अंक : १७६

अगस्त २००७ मूल्य : रु. ६-००

श्रावण-भाद्रपद, वि.सं.२०६४

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.

ऋषि प्रसाद से संबंधित कार्य के लिए फोन नं. : (०७९) ३९८७७७१४, ६६११५७१४.

अन्य जानकारी हेतु फोन : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.

e-mail : ashramindia@ashram.org
: ashramindia@gmail.com

web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम

प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी

प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.

मुद्रण स्थल : दिव्य भास्कर, भास्कर हाऊस, मकरबा, सरखेज-गाँधीनगर हाईवे, अहमदाबाद - ३८००५१.

सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी

सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा श्रीनिवास

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें। पता-परिवर्तन हेतु एक माह पूर्व सूचित करें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

SONY

'संत आसारामजी वाणी' प्रतिदिन सुबह ७-०० बजे।

संस्कार

'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २-०० बजे व रात्रि ९-५० बजे।

'संत श्री आसारामजी बापू की ...' दोप. १२-...।

भारत में दोप. ३-३० से यू.के. में सुबह ११.०० बजे से।

JAGRAN

रोज सुबह ६-३० बजे।

मानव-तन अधम या दुर्लभ ?

- पूज्य बापूजी

'रामचरितमानस' में लिखा है :

छिति जल पावक गगन समीरा ।
पंच रचित अति अधम सरीरा ॥

'पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु - इन पाँच तत्त्वों से यह अत्यंत अधम शरीर रचा गया है ।' **(कि.कां. : १०.२)**

यह मनुष्य-शरीर अधम है । कुछ हड्डियाँ हैं, मांस है, मल है, मूत्र है, क्या है इसमें शुद्ध ? जरा-सी चमड़ी हटाकर देखो तो तौबा-रे-तौबा ! इसमें क्या भरा है ! ऐसा अधम शरीर है और फिर यह भी कहते हैं :

बड़ें भाग मानुष तनु पावा ।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥

'बड़े भाग्य से यह मनुष्य-शरीर मिला है । सब ग्रंथों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है ।' **(रामचरित. उ.कां. : ४२.४)**

रामायण की ये दो बातें विरोधाभासवाली दिखती हैं। तो कौन-सी सच्ची ? अधम शरीरवाली सच्ची कि **बड़ें भाग मानुष तनु पावा ।** - यह सच्ची ? अरे, महापुरुषों के वचनों में कोई बात सच्ची और कोई बात झूठी, ऐसा सोचना ही दुर्बुद्धि है। जो ऐसा सोचते हैं वे अपनी बुद्धि का इलाज करें । दोनों बातें अपनी-अपनी जगह पर एकदम अमृतमय हैं, हमारे कल्याण के लिए हैं । शरीर को 'मैं' व संसार की चीजों को 'मेरा' मानते हो और संसार से मजा लेते हो, देह का जीवन अपना जीवन, देह की मृत्यु अपनी मृत्यु, देह का बुढ़ापा अपना बुढ़ापा मानते हो तो आपके लिए यह शरीर अधम है ।

मनुष्य रति, प्रीति, तृप्ति और संतुष्टि शरीरों से लेगा तो अधम है । निगुरे आदमी को काम-भोग में रति होती है, परिवार और पैसे में प्रीति होती है तथा वह भोजन, शराब और पेय पदार्थों से तृप्ति चाहता है। अतः उसके लिए शरीर अधम है, जो मृत्यु एवं जन्म-मरण का कारण बनेगा लेकिन जिसकी भगवान में रति, भगवान में प्रीति, भगवान में संतुष्टि होती है, उसके लिए मानव-तन मोक्षप्राप्ति का देवदुर्लभ साधन बन जाता है :

बड़ें भाग मानुष तनु पावा ।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥

शरीर से संसार का मजा लेते गये तो सुअर, कुत्ते, घोड़े, गधे और बकरे से भी गये-बीते हो गये क्योंकि वे तो कर्म का फल भोग के नीच योनि से ऊपर उठ रहे हैं और आपने मनुष्य-शरीर पाकर अगर ऐसा कर्म किया, जिससे नीच योनि मिले तो आप तो मनुष्यता से नीचे जा रहे हो, शरीर अधम हो गया आपका । इसी शरीर का अगर सदुपयोग करते हो तो यह बहुत महान है ।

सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥

आपने विवेक जगाकर अपने स्वभाव को बदला, पशुता से मनुष्यता, मनुष्यता से देवत्व और देवत्व से देवेश्वरत्व (परमात्म-तत्त्व) की तरफ अपनेको ले गये तो आपका तो मंगल, आपके कुल-खानदान में जो पैदा होनेवाले हैं उनका भी मंगल ! मरणधर्मा शरीर विवेक जगाकर जहाँ मौत की दाल नहीं गलती उस अमर पद को पाने की योग्यतावाला है इसलिए अधम होते हुए भी यह देवताओं को भी दुर्लभ है ।

खाया-पीया और पैसों का संग्रह किया, भोग

भोगा, किसीकी निंदा का मजा लिया, अपनी वाहवाही का मजा लिया तो जीवन तुच्छ हो जाता है परंतु विवेक जगाकर किसीके दुःख दूर किये और अपने सुख की वासना मिटाकर सुखस्वरूप आत्मा को जानने का पुरुषार्थ किया तो आपकी चरणरज भी दूसरे का भाग्य सँवारनेवाली हो जाती है ।

इस अति तुच्छ शरीर के लिए संत कबीरजी ने कहा : **यह तन विष की बेलरी...** यह तन क्या है ? विष की बेल है । अच्छी मिठाइयाँ खाओ, पवित्र गंगाजल पीयो, ४-६ घंटे में सब मल-मूत्र हो जाता है । दिवाली के दो दिन पहले करोड़ों रुपयों की मिठाइयों को अगरबत्ती की जाती है और दिवाली के दो दिन बाद वे मिठाइयाँ जहाँ गिरती हैं उधर से नाक दबा के जाना पड़ता है । कारण ? वे केवल मनुष्य के शरीर से पसार हुईं, बस । ऐसा यह अधम शरीर है । **यह तन विष की बेलरी...**

खाना हजम नहीं हुआ तो अम्ल बन जायेगा, सूक्ष्म जहर बन जायेगा और बाकी का जो रस बना उससे काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, चिंता, शोक बनता है । तो क्या बढ़िया हुआ ? परंतु विवेक जग गया तो उसीसे भगवद्भाव, भगवद्रस, भगवद्ज्ञान, परोपकार, 'परमात्मा क्या है ? आत्मा क्या है ?' ऐसी आत्मसाक्षात्कार की धारा भी पैदा हो सकती है । ऐसी मति का धनी शरीर है इसलिए बोलते हैं :

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।
सिर दीजे सद्गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ।।
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट ।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भरम का कोट ।।

भरम का जो कोट है, बुद्धि पर जो अज्ञान की पर्तें चढ़ी हैं, थर-पर-थर चढ़ी है कि 'यह खाऊँ तो सुखी हो जाऊँ, यह करूँ तो सुखी हो जाऊँ, यह भोगूँ तो सुखी हो जाऊँ, यह बनाऊँ तो सुखी हो जाऊँ...' अरे ! भोग के, खा के, मार के, मिटा के सुखी नहीं होते । सुख कहाँ है, इसको जान लें । जो सत् है, जो चेतन है, जो ज्ञानस्वरूप है उसीमें सुख है ।

जीभ पर ऐसी कोई दवा लगा दी जाय कि स्वाद का ज्ञान नहीं हो तो क्या आपको मनपसंद वस्तु खाने का सुख मिलेगा ? नहीं मिलेगा ।

नाक में ऐसी चीज लगा दें कि आपको सुगंध का ज्ञान न हो तो सुगंध का सुख नहीं मिलेगा । ऐसे ही स्पर्श-इंद्रिय को इंजेक्शन लगाकर बधिर (सुन्न) कर दो, फिर कितना भी कामी और कामिनी एक-दूसरे को स्पर्श करें लेकिन स्पर्श का ज्ञान न हो तो सुख नहीं मिलेगा । इस प्रकार ज्ञान न हो तो सुख नहीं मिलेगा । ज्ञान से ही सुख की झलक दिखती है परंतु ज्ञान के मूल में जाओ तो आप सुखस्वरूप हो जाते हो, आप ज्ञानस्वरूप हो जाते हो, आप प्रेरणास्रोत बन जाते हो - ऐसी योग्यता आपकी मति में बीजरूप में भरी है । सत्संग और साधना के द्वारा वह बीज वृक्षरूप में प्रकट होकर अमृतफल देता है । उसमें ईश्वरप्राप्ति का फल लगता है ।

स्वभावविजयः शौर्यम् ।

आप अपने स्वभाव पर विजय पाओ कि यह हाड़-मांस का शरीर पहले नहीं था, बाद में नहीं रहेगा और अभी भी नहीं की तरफ जा रहा है लेकिन यह शरीर नहीं होगा फिर भी मैं रहूँगा । तो मैं सत् हूँ, शरीर असत् है । मैं चेतन हूँ, शरीर जड़ है । मैं सुखस्वरूप हूँ और शरीर दुःखरूप है । इतना खिलाओ-पिलाओ, इतने मकान बनाओ, इतना कुछ करो परंतु जरा-सा इधर-उधर होता है तो 'ऐं-ऊँह' कर देता है इतना बेवफा है । शरीर भी बेवफा और गहने-गाँठें भी बेवफा, गाड़ी-मोटरें भी बेवफा । तो ऐसे बेवफा शरीर और संसार की बेवफा चीजों को 'मैं' और 'मेरा' क्यों मानना ?

यह शरीर अधम है पर ऐसे **(शेष पृष्ठ ७ पर)**

गुरु बिन मिटे न भेद

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

कितनी भी ऊँचाई पर चले जाओ परंतु जब तक अंतःकरण में यह पाँच प्रकार का भेद - जीव-जीव का भेद, जीव-जड़ का भेद, जीव-चेतन का भेद, जीव-ईश्वर का भेद और जीव-ब्रह्म का भेद मौजूद रहेगा तब तक मुक्ति का अनुभव नहीं होगा, तब तक मोक्ष का सुख नहीं मिलेगा।

वास्तव में परब्रह्म परमात्मा सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद से रहित है। सजातीय माने उसकी बराबरी का दूसरा कोई है। जैसे ब्राह्मण-ब्राह्मण सजातीय हो गये, वृक्ष-वृक्ष सजातीय हो गये, पटेल-पटेल सजातीय हो गये, मनुष्य-मनुष्य सजातीय हो गये, गाय-गाय सजातीय हो गयी। ऐसा नहीं कि यह ब्रह्म-परमात्मा है तो ऐसे-का-ऐसा दूसरा ब्रह्म मौजूद है। जैसे, यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है- अब इतने ब्रह्म बैठे हैं, ऐसा नहीं है। इतने ब्रह्म नहीं हैं, एक ही ब्रह्म है। इतने घड़े हो सकते हैं परंतु उनमें स्थित आकाश एक ही है। ऐसे ही कितने ही दीये हो सकते हैं लेकिन अग्नि एक ही है। कितनी ही तरंगें हो सकती हैं किंतु सागर का जल एक ही है। ऐसे ही ब्रह्म भी एक ही है तो परमात्मा सजातीय भेद से रहित है।

विजातीय भेद - ब्राह्मण-क्षत्रिय का भेद विजातीय भेद है। कोई ब्रह्म है, कोई ब्रह्म से थोड़ा-सा छोटा है, ऐसा भी नहीं है।

स्वगत भेद - जैसे शरीर में हाथ अलग है, पैर अलग है, नाक अलग है, कान अलग है। यह स्वगत - स्व में जो भेद है, ऐसा भी भेद नहीं है परमात्मा में, ब्रह्म में। इस प्रकार परमात्मा सजातीय, विजातीय व स्वगत भेद से रहित है।

गुरु बिन ज्ञान न उपजे, गुरु बिन मिटे न भेद।
गुरु बिन संशय ना मिटे, जय जय जय गुरुदेव ॥

गुरु के बिना यह भेद मिटता नहीं है और जब तक यह भेद मिटता नहीं है तब तक भय जाता नहीं है, संशय जाता नहीं है। यह भेद मिटने पर ही भय और संशय का उन्मूलन होता है। यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसको खूब ध्यान से समझ लेना।

'गुरु बिन ज्ञान न उपजे' मतलब अपनी अखंडता का ज्ञान गुरु के बिना उपजता नहीं है। देव आ जायेगा और आपका वांछित फल दे देगा किंतु अपनी अखंडता का ज्ञान तो यह भेद मिटाने पर ही होगा। गुरुदेव उपदेश देकर यह भेद मिटा देंगे।

एक शिष्य ने गुरु के पैर पकड़े और प्रार्थना की : ''गुरु महाराज ! कृपा करो, मैंने सुना है कि मैं ब्रह्म हूँ लेकिन लगता है कि ब्रह्म-परमात्मा तो सर्वव्यापक है, सर्वशक्तिमान है, सजातीय-विजातीय-स्वगत भेद से रहित है और मैं तो हूँ क्षत्रिय, हलवाई का बेटा, मिट्ठूमल का मौसा हूँ... मैं तो ऐसा हूँ...।''

गुरु ने कहा : ''चल ! गड़बड़ करता है। ब्रह्मज्ञान पाना है ?''

''हाँ गुरुजी !''

''लाओ, जरा पानी पिला दो। गंगाजी से भरकर लाओ।''

शिष्य ने उत्साह से लोटा माँज के गंगाजल भरकर गुरु के आगे धर दिया। गुरु उसमें उँगली डालकर घुमाने लगे।

''अरे, यह गंगाजल कहाँ है ?''

''गुरुजी ! यह गंगाजल है।''

''गंगाजल में तो रेत के कण बहते हैं, मछलियाँ तैरती हैं, कछुए तैरते हैं और झाग, बुलबुले, तरंगें उठती हैं। इसमें तो कुछ भी नहीं है।''

''गुरुजी ! गंगाजी का वह लम्बा-चौड़ापन छोड़िये और इस लोटे का छोटापन छोड़िये। आपके

चरणों की कसम खाकर कहता हूँ, 'जो जल गंगाजी में बह रहा है वही लोटे में है।''

गुरुजी ने कहा : ''जैसे तू मेरे चरणों की कसम खाकर कहता है कि यह वही गंगाजल है, वैसे ही ईश्वर की, 'ॐ' की ये आकृतियाँ छोड़ दे और तेरी आकृति छोड़ दे, बाकी मैं भी तेरी कसम खाकर बोलता हूँ, तू भी वही ब्रह्म है।''

सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद कार्य (प्रकृति) की अपेक्षा दिखता है, कारण (परमात्मा) में नहीं है। कार्य की अपेक्षा जो भेद दिखता है न, वह दिखने भर को है, वास्तव में नहीं है। जैसे - आप सिनेमा देखते हैं तो प्रकाश एक ही होता है लेकिन प्लास्टिक की पट्टियों के माध्यम से पर्दे पर अनेक भेद दिखते हैं - कहीं मोटर-गाड़ी भाग रही है तो कहीं रेल... वास्तव में देखा जाय तो सब प्रकाश का ही चमत्कार है।

एक बार स्वामी अखंडानन्दजी गाँधीजी के स्मृतिगृह में पहुँचे। सूत का बुना हुआ गाँधीजी का चित्र था। देखते हैं हाथ में डंडा है, किताबें हैं, चश्मा है, गाँधी-हाट की चप्पल है गाँधीजी के पैर में, धोती है। सूत के बने गाँधीजी का चश्मा भी सूत है, डंडा भी सूत है, धोती भी सूत है। भेद दिखने भर को है, बाकी सूत-ही-सूत है। ऐसे ही पर्व में शक्कर के खिलौने बनते हैं। फूल बनते हैं, घोड़े बनते हैं, दीये, हाथी, राजा-रंक बनते हैं और देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ भी बनती हैं। अनेक रंग होते हैं, अनेक रूप होते हैं, अनेक आकृतियाँ होती हैं। अनेक भेद दिखते हैं परंतु जिसकी शक्कर पर नजर है, उसके लिए भेद होते हुए भी अभेद है। जिसकी खिलौनों पर नजर है वह अभेद में भी भेद देखता है।

संत उड़िया बाबाजी एक दिन मौज में आकर अपने एक शिष्य से बोले : ''बेटा ! ब्रह्मज्ञान का मतलब ही है, यह रेत का कण है न, यह भी ब्रह्म दिखे। जब तक ऐसा नहीं दिखता तब तक ब्रह्मज्ञान नहीं हुआ।'' ❑

मोह-ममता से रक्षा

विपरीत परिस्थितियों में भगवान की कृपा के दर्शन करें। बेटा अच्छा चलता है तो उतना फायदा नहीं होता, जितना बेटा, पत्नी या परिवारवाले गलत चलते हैं तो होता है। अच्छा चलेंगे तो मोह-ममता में समय बीत जायेगा, बुरा चलेंगे तो वैराग्य होगा।

राजा लोग देखते थे कि हमारा बेटा हमारा कहना नहीं मानता है, ऐसा है-वैसा है...तो दुःखी होते थे। फिर जब सत्संग मिलता तो समझते कि भगवान की कृपा है। कहना मानता तो ममता में मर जाते, नहीं मानता है तो ठीक है, वैराग्य हो गया।

आज के ज़माने में टीवी. चैनलों, अखबारों और वातावरण ने बच्चे-बच्चियों का स्वभाव ऐसा बना दिया कि माँ-बाप का कहना नहीं मानते, उलटा चलते हैं तो माँ-बाप को भी वैराग्य आता है। पहले सत्संग से, विवेक से वैराग्य आता था, फिर लोग एकांत में चले जाते थे। अब इतना विवेक-वैराग्य नहीं रहा तो भगवान गड़बड़ द्वारा वैराग्य दिलाते हैं कि चलो, बेटों गड़बड़ करो, बेटियों गड़बड़ करो, भाइयों गड़बड़ करो ताकि संसार से वैराग्य आये।

'महाभारत' में लिखा है : दो अक्षरों से बंधन है और तीन अक्षरों से मुक्ति है। 'मम' - यह मेरा है- बेटा मेरा है, पत्नी मेरी है, धन मेरा है... 'मम' अर्थात् ममता से बंधन है। 'निर्मम' - यह मेरा नहीं है - मुक्त हो गये। हमको मुक्ति चाहिए तो मुक्ति कोई आकाश-पाताल में नहीं है। ममता, आसक्ति का त्याग हो गया तो मुक्त ही हैं। शरीर तो ऐसे भी समय पाकर मुक्त हो ही जायेगा, मर ही जायेगा। मन में आसक्ति नहीं है तो दुबारा जन्मना नहीं है। भगवान का ध्यान, भजन किया, आनंद लिया तो उस आनंद में लीन होना है।

- पूज्य बापूजी के सत्संग से ❑

गिरधर की दीवानी गौरीबाई

संवत् १८१५ में गीरपुर [वर्तमान में डुंगरपुर (राज.)] में गौरीबाई का जन्म हुआ । वह पाँच वर्ष की उम्र में ही विधवा हो गयी थी । इतनी छोटी उम्र में शादी क्या, पति क्या, विधवापना क्या ? - इसका उस बालिका को क्या पता !

समय बीता । गौरीबाई ने युवावस्था में प्रवेश किया । उसकी सहेलियाँ सोलह श्रृंगार करके ससुराल जाने लगीं । उन्हें सजा देखकर गौरी ने अपनी माँ से कहा : ''माँ ! मुझे भी इनकी तरह सजना है ।''

माँ : ''बेटी !...''

''माँ ! बोलते-बोलते क्यों रुक गयी ?''

''बेटी ! तू पाँच साल की थी, तभी तेरी शादी हो गयी । थोड़े ही दिनों में तेरा पति मर गया । इसलिए तू ऐसा श्रृंगार नहीं कर सकती ।''

''माँ ! ये सब सहेलियाँ ससुराल जा रही हैं, मुझे कब जाना है ?''

''बेटी ! तुझे अब अपने कन्हैया के साथ ही रहना है । वही सबका सच्चा स्वामी है । किसीका सौभाग्य जल्दी छिन जाता है तो किसीका बाद में, एक दिन तो सबका छिनेगा ही । मीरा की तरह तू गिरधर गोपाल को ही वर ले । जो गोपाल को वर लेते हैं उनका सौभाग्य अमर रहता है ।''

बस, तबसे उसे भगवद्भक्ति का रंग लग गया । सहेलियों के साथ घूमना-फिरना छोड़कर वह अपने कन्हैया को ही रिझाने लगी । धीरे-धीरे नश्वर संसार से उसका चित्त ऊब गया और विमल विवेक जगा । अब तो वह माधव की मस्ती में ही मस्त रहने लगी ।

हरि कुं गाऊं मैं तो हरि कुं रिझाउँ रे,
जगत झाल में चित्त न लगाऊँ रे ।
अखंड आनंद तज अल्प न चहाऊँ रे,
दास गौरी हरिचरण में जाऊँ रे ॥

हरिचरणों को चित्त में बिठाकर गौरी दिन-ब-दिन भक्ति के गहरे समुद्र में गोते लगाने लगी । पूर्व के संस्कार कहो या भक्ति का प्रभाव कहो, गौरीबाई के कंठ से प्रभुभक्ति के सुंदर पद निकलने लगे । भगवान के गीत गाते-गाते प्रेमाभक्ति में तल्लीन हो वह ध्यानस्थ होने लगी, जिसके प्रभाव से उसकी अंदर की आँखें खुल गयीं ।

एक रामानंदी संत ने उसे तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया । उनके सान्निध्य में गौरीबाई ने योग और तत्त्वज्ञान का गहरा अभ्यास किया । कवित्वशक्ति तो पहले से ही खिली हुई थी, अब वह बाई जो भी पद गाती उसमें से भक्ति के साथ तत्त्वज्ञान का भी प्रकाश मिलने लगा । धीरे-धीरे गौरीबाई की भक्ति की सुवास राजस्थान के गाँव-गाँव में फैलने लगी । लोग उसे मीरा का अवतार मानने लगे ।

एक बार भक्तों के साथ कीर्तन करती गौरीबाई गोकुल-वृंदावन की ओर जाते हुए जब जयपुर के नजदीक पहुँची तो राजा प्रतापसिंह ने उसका भावभीना स्वागत करते हुए कहा : ''देवि ! जयपुर के राज-आँगन को भी अपनी चरण-रज से पावन कर दो ।''

गौरीबाई ने राजा का भावपूर्ण आमंत्रण स्वीकार किया । भक्ति और योग के प्रभाव से गौरीबाई का मुखारविंद चमक रहा था । गौरीबाई के दर्शन से प्रतापसिंह के मन में एक प्रश्न उठा कि सब लोग गौरीबाई को मीरा का अवतार मानते हैं । कहते हैं, 'इनकी आँखें अहर्निश श्रीहरि के

दर्शन करती हैं।' - यह बात कितनी सत्य है ?

जयपुर के राजमहल में भगवान श्री गोविंदजी का मंदिर है। राजा ने मंदिर के पुजारी से कहा : ''कल गोविंदजी का ऐसा सुंदर शृंगार करो कि पहले कभी नहीं हुआ हो और इस बात का ख्याल रखना कि किसीको शृंगार के बारे में पहले से पता न चले।''

सुबह हुई, जयपुर के राजमहल में गौरीबाई का आगमन हुआ। राजा-रानी ने उसका आदर-सत्कार किया। फिर गौरीबाई के साथ ज्ञानचर्चा होने लगी। अंत में गौरीबाई ने कहा : ''सच कहूँ, वेद-पुराणों की हम कितनी भी बातें करें लेकिन जब तक हृदय पवित्र नहीं होता, तब तक हरि की झाँकी नहीं होती। जिसका हृदय स्फटिक जैसा निर्मल होता है, वहीं हरि विराजते हैं।''

हरिदर्शन की बात आते ही गौरीबाई ने प्रतापसिंह से पूछा : ''महाराज ! मैंने सुना है कि आपके महल में गोविंदजी की सुंदर मूर्ति है। अभी दर्शन को कितनी देर है ?''

राजा गौरीबाई की परीक्षा लेना चाहते थे। उन्होंने कहा : ''अभी तो मंदिर के पट भी नहीं खुले हैं। आप तो ठाकुरजी की मीरा हो, हृदय में ठाकुरजी को बिठाती हो। आप यहीं बैठे-बैठे बताइये कि आज ठाकुरजी का शृंगार कैसा है ?''

गौरीबाई ने मन का तार हरि से जोड़ दिया और वहीं बैठे-बैठे ठाकुरजी के सारे शृंगार का वर्णन कर दिया परंतु एक बात उसने नहीं कही।

राजा ने गौरीबाई से कहा : ''आपने जैसा कहा, ठाकुरजी का वैसा ही शृंगार आज है किंतु ठाकुरजी के मुकुट का वर्णन तो आपने किया नहीं।''

''महाराज ! ध्यान में मुझे ठाकुरजी के जैसे दर्शन हुए वैसा ही वर्णन मैंने किया।''

सत्य-असत्य के निर्णय के लिए गोविंदजी के मंदिर के द्वार खोले गये। देखा तो सचमुच ठाकुरजी के मस्तक पर मुकुट नहीं था। वह पीछे के भाग में गिर गया था। राजा गौरीबाई के चरणों में गिर पड़ा और विनम्र भाव से बोला : ''गौरीबाई ! आपने अपने क्षेत्र को तो पावन किया पर जयपुर की जनता भी आपकी ऋणी रहेगी।''

एक बाल विधवा कन्या भगवद्भक्ति से इतनी ऊँची हो गयी कि जयपुर का राजा प्रतापसिंह उसके चरणों में गिरकर अपना भाग्य बनाता है। कोई चरणों में गिरे- यह बड़ी बात नहीं है। विषय-विकारों से अपनेको बचाकर भगवद्-सत्ता में एकाकार होना- यह बड़ी बात है। ❐

(पृष्ठ ३ का शेष) अधम शरीर को भी सत्संग के द्वारा ज्ञान, आनंद, परोपकार, औदार्य- ये सद्गुण मिलते हैं तो यह मोक्ष का द्वार बन जाता है। वह ब्रह्म-आनंदस्वरूप मेरा आत्मा-परमात्मा था। यहाँ नहीं है, कहीं और है - ऐसी मेरी मति दुर्मति थी। जब भगवत्कृपा, गुरुप्रसादी मिली तो वह दुर्मति कहाँ चली गयी पता ही नहीं चला।

तो आप उदार बनिये। उदारता के सुख से अपने अंतःकरण में निष्कामता लाइये, उपासना से थोड़ा एकाग्रता का रस लाइये और तत्त्वज्ञान से अज्ञान मिटाइये। इस प्रकार आप देवताओं के भी आदरणीय-पूजनीय हो सकते हैं। देवता भी आपका दीदार करके अपना भाग्य बना सकते हैं, आप ऐसे ब्रह्मवेत्ता हो सकते हैं। ❐

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

अन्नमय शरीर से अन्तरतम चैतन्य की ओर

- पूज्यश्री

यह पंचभौतिक शरीर अन्नमय है । इसके अंदर चार शरीर और भी हैं : (१) प्राणमय (२) मनोमय (३) विज्ञानमय (४) आनंदमय ।

यह दिखनेवाला स्थूल शरीर 'अन्नमय शरीर' है । अन्नमय शरीर में जीनेवाले को भूख और नींद की पूर्ति में रस आता है । अन्नमय शरीर के अंदर है 'प्राणमय शरीर' । पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच प्राण - इसे प्राणमय शरीर कहते हैं । अगर प्राणमय शरीर निकल जाता है तो अन्नमय शरीर मुर्दा हो जाता है। प्राणमय शरीर में जीनेवाले को इन्द्रियों के विषय-संयोग में रस आता है । उनमें क्रिया की प्रधानता होती है ।

प्राणमय शरीर का संचालन उसके अंदर स्थित 'मनोमय शरीर' करता है। इसके अंतर्गत मन, अहंकार और कर्मेन्द्रियाँ आती हैं। मन के संकल्प-विकल्प के आधार पर ही प्राणमय शरीर क्रिया करता है। मनोमय शरीर में जीनेवाले अपनी कामनापूर्ति में रस लेते हैं । उनमें भाव अथवा अपनत्व की प्रधानता रहती है ।

मनोमय शरीर के भीतर है 'विज्ञानमय शरीर'। इसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और बुद्धि का समावेश है। मनोमय शरीर को सत्ता यही विज्ञानमय शरीर देता है। विज्ञानमय शरीर में जीनेवाले को 'सत्य क्या है, मिथ्या क्या है, शाश्वत क्या है, नश्वर क्या है आदि' सद्-असद् विवेचन में रस आता है। उनमें ज्ञान-विवेक की प्रधानता रहती है। विज्ञानमय शरीर की गहराई में 'आनंदमय शरीर' है । आनंदमय शरीर में जीनेवालों में निष्काम प्रेम की प्रधानता होती है । उन्हें आत्मस्वरूप से अभिन्न होने में रस आता है। आनंदमय शरीर कारण शरीर या सुषुप्ति के रूप में माना गया है।

कोई भी कार्य हम क्यों करते हैं ? इसलिए कि हमें और हमारे मित्रों को आनंद मिले । दाता दान करता है तो भी आनंद के लिए करता है। भगवान के आगे हम रोते हैं तो भी आनंद के लिए एवं हँसते हैं तो भी आनंद के लिए। जो भी चेष्टा करते हैं आनंद के लिए करते हैं क्योंकि परमात्मा आनंदस्वरूप हैं। उनके अत्यन्त निकट का जो शरीर है उसे 'आनंदमय शरीर' कहते हैं। जब तक मानव में विज्ञानमय, आनंदमय शरीर विकसित नहीं होता, तब तक उसमें लोभ-मोह-मान-भोग आदि की ही प्रबलता रहती है ।

हम देखते हैं कि स्थूल शरीर भी बदलता है, मन भी बदलता है, बुद्धि के निर्णय भी बदलते हैं किंतु इन सबको देखनेवाला शुद्ध चैतन्य परमात्मा नहीं बदलता। इन सब शरीरों को चेतना देनेवाला वह चैतन्यस्वरूप, सत्तास्वरूप है; जो 'मैं-मैं' का उद्गम-स्थान है, उसे भी जानता है, कितना सहज, सुलभ और सदा साथ रहनेवाला आत्मा-परमात्मा है ! ☐

महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १७८वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया अगस्त २००७ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

कर्तव्य-अकर्तव्य

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

भगवान श्रीकृष्ण दुर्योधन को बोलते हैं : 'युद्ध ठीक नहीं है।' भगवान उससे युद्ध न करने का आग्रह करते हैं लेकिन वह नहीं माना, आखिर युद्ध करने पर उतारू हो ही गया।

अर्जुन युद्ध नहीं करना चाहते थे। भगवान ने उन्हें युद्ध करने के लिए बाध्य कर दिया, जबरदस्ती नहीं बल्कि समझ देकर। जो युद्ध नहीं करना चाहते उनसे श्रीकृष्ण युद्ध करवाते हैं और जो युद्ध किये बिना रहता नहीं उसको युद्ध से निवृत्त होने का उपदेश देते हैं। ये तो आपस में टकराववाली बातें हुईं ! परंतु टकराव नहीं है।

दुर्योधन जब युद्ध करता है तो जगत में आसक्त और भोगी हो के अधर्म का आश्रय लेता है। उसके युद्ध करने का उद्देश्य धर्म की रक्षा नहीं अपने अहं की रक्षा है, जनता की - समाज की सेवा नहीं अपने 'मैं' की सेवा है। वह इसमें अपने साथियों की बलि देने पर भी उतारू है। इससे उसके दुष्कर्म गहरे बनेंगे, उसका पतन होगा। कई योनियों में उसे इसका फल भोगना पड़ेगा तथा उसकी सेना के निर्दोष लोग और उनके परिवारवाले भी दुःखी होंगे।

अर्जुन देखते हैं कि 'मेरे चचेरे भाई, भीष्म पितामह एवं गुरु द्रोणाचार्य जैसे हमारे माननीय लोग दुर्योधन के पक्ष में आ गये तो उनके सामने मैं युद्ध कैसे करूँ ?' वे युद्ध करने से इनकार करते हुए कहते हैं :

गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो
भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव
भुंजीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान्॥

'इन महानुभाव गुरुजनों को न मारकर मैं इस लोक में भिक्षा का अन्न भी खाना कल्याणकारक समझता हूँ क्योंकि गुरुजनों को मारकर भी इस लोक में रुधिर से सने हुए अर्थ और कामरूप भोगों को ही तो भोगूँगा।' **(गीता : २.५)**

अर्जुन साधु बनकर भिक्षा माँगने के लिए तैयार होते हैं। वे साधु बनने के उद्देश्य से साधु नहीं बनते परंतु मोह में आकर धर्मयुद्ध का अपना कर्तव्य छोड़ के साधु बनना चाहते हैं तो भगवान उनको वैसा करने के लिए मना करते हैं और युद्ध करने की आज्ञा देते हैं। □

क्रोध, चिंता व दुःख से कैसे बचें ?

- पूज्य बापूजी

जीवन में जब क्रोध आये तो आप क्या करोगे ?

'क्रोध आता है और जाता है, मेरा सत्स्वरूप सदा रहता है।'- ऐसा चिंतन करके आप 'अरे, ओयऽऽऽ वह आ गया... आ गया... क्रोध आ गया... ओय-होय...'- ऐसा चिल्लाओ तो क्रोध की कमर टूट जायेगी। जैसे कोई जेबकतरा आये और आप चिल्लाने लगें : 'आया-आया, चोर आया...' तो वह ढीला पड़ जायेगा।

चिंता आये तो चिल्लाओ : 'अरे, आयी-आयी... चिंता आयी रे आयी ! हरि ॐ... ॐ... ॐ... चिंता आयी...' और फिर हास्य-प्रयोग करो : 'ॐ... ॐ... हाऽ हाऽ हाऽ।' बोलो, रहेगी चिंता ? नहीं रहेगी। दुःख आये तो मौज में चिल्लाओ : 'अरे, आ गया रे ! लुच्चा आ गया...।' दुःख, क्रोध आदि के आने का भी मजा लो। □

प्रश्न : वैराग्य क्यों नहीं होता ? बार-बार संसार में ठोकरें खाते हैं; वह छूट गया, वह पीड़ित हो गया, यह हो गया, वह मर गया और अपनेको भी सब छोड़कर मरना ही है यह भी देखते हैं । थोड़ी देर के लिए वैराग्य होता है, फिर जैसे थे वही स्थिति हो जाती है । वैराग्य क्यों नहीं टिकता ?

पूज्य बापूजी : वैराग्य जगाने के लिए 'ईश्वर की ओर' पुस्तक पढ़ें, कभी-कभी श्मशान में जायें व मुर्दे को देखें । प्राणायाम करके फिर ॐकार का जप करें व प्रभु से प्रार्थना करें कि 'प्रभु ! तेरी प्रीति, तेरे में राग दे दे । ॐ... ॐ... ॐ... ।' भगवान में राग होगा तो शाश्वत के राग से नश्वर का राग मिटेगा । (माताओं-बहनों को श्मशान में नहीं जाना चाहिए । केवल ॐकार का जप भी अधिक नहीं करना चाहिए ।)

वैराग्यवान महापुरुषों के, जिन्होंने आत्मा-परमात्मा को पाया है, ऐसे महापुरुषों की जीवन-गाथा सुनें, पढ़ें; जिनको परमात्मा मिला है और उन्होंने वर्णन किया है ऐसी भगवद्स्तुतियाँ पढ़ें । भगवद्प्रेम निर्विकारी, निर्दोष नारायण से मिलानेवाला है । 'भगवन्नाम-जप महिमा' आदि सत्साहित्य पढ़ें । हलके संग, हलके आहार-विहार से अपनेको बचाया करें । वैराग्य का मार्ग दिखानेवाले 'श्रीमद्भागवत, श्री योगवासिष्ठ' जैसे सत्शास्त्रों का अध्ययन करें । 'श्री योगवासिष्ठ' का प्रथम भाग विवेक-वैराग्य जगानेवाला है ।

वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ।

'वैराग्य में राग करो और भक्तिनिष्ठ हो जाओ ।'

प्रश्न : हम अपनी वाणी को निर्दोष कैसे बनायें ?

पूज्य बापूजी : सुबह उठकर कम-से-कम पाँच दुर्गुणों की भावनात्मक आहुतियाँ दें । भावना करें कि 'मैं अपने राग, द्वेष, अविद्या, अस्मिता और अभिनिवेश की आहुतियाँ दे रहा हूँ ।'

ॐ अविद्यां जुहोमि स्वाहा ।
ॐ रागं जुहोमि स्वाहा ।
ॐ द्वेषं जुहोमि स्वाहा ।
ॐ अस्मितां जुहोमि स्वाहा ।
ॐ अभिनिवेशं जुहोमि स्वाहा ।

इन पाँच दुर्गुणों के कारण अपना 'सत्' स्वभाव ढका रहता है, जिससे वाणी असत्ययुक्त, कटु एवं कठोर हो जाती है ।

'मधुर व्यवहार' पुस्तक पढ़ें । इससे आपको वाणी मधुर बनाने में मदद मिलेगी ।

प्रश्न : श्रद्धा व भक्ति कैसे बढ़े ?

पूज्य बापूजी : सत्संगियों, श्रद्धालुओं एवं भक्तों का संग करना, ईश्वर को अपना मानना और प्रीतिपूर्वक उनका सुमिरन करना, निन्दक लोगों से बचना तथा 'ईश्वर की ओर' पुस्तक पढ़ना श्रद्धा व भक्ति बढ़ाने के अनुपम साधन हैं ।

मैं गुरुजी के आश्रम में गया तो गुरुजी बाहर गये हुए थे । गुरुजी के आश्रम के नजदीक एक बहुत बड़ा आश्रम था । जब मैं वहाँ गया तो वहाँ के मठाधीश ने मेरी बहुत आवभगत की । पूड़ी आदि तरह-तरह के व्यंजन बनवाये । फिर धीरे-से उसने मेरे गुरुजी के विपक्ष में बोलना शुरू किया । मैं वहाँ से तुरंत चल पड़ा, दुबारा उसका मुँह नहीं देखा । वह बहुत प्रसिद्ध हस्ती थी । लोटे में भरे पानी को देखते-देखते दूध बना दे -

ऐसी सिद्धि उसके पास थी । उसने गुरुजी के प्रति मेरी श्रद्धा तोड़ने की कोशिश की तो उसका मुँह क्या देखना ? मैं उसकी बातों में आ जाता, मेरी श्रद्धा टूटती तो मुझे क्या मिलता ? मेरी श्रद्धा अडिग रही तो मुझे देने में गुरुजी ने क्या कमी रखी ? जैसे बच्चे को माँ हर्षित होकर दुग्धपान कराती है, वैसे ही गुरु हर्षित होकर श्रद्धालु को भगवद् करुणा-कृपा भरे शुद्ध संकल्प से, सत्य संकल्पमय अपने अन्तःकरण से, वाणी से, दृष्टि से पुष्ट करते रहते हैं ।

प्रश्न : ईश्वरप्राप्ति की तीव्र लगन कैसे लगे ?

पूज्य बापूजी : भगवन्नाम जपें, विवेक-वैराग्य संपन्न लोगों का संग करें। विषय-विकार, सिनेमा आदि से अपनेको बचायें। एकांत में निःसंग होकर नारायण की पुकार और प्रभुप्रेम, प्रभुज्ञान बढ़ानेवाले सत्साहित्य का अवलोकन करके तनिक चुप हो जायें। फिर थोड़ा पढ़ें, फिर थोड़ा चुप हो जायें। भोगियों के संग से अपनी रक्षा करके योगियों का संग करें। योगियों व भक्तों के चरित्रों में अपने मन को लगायें। इससे भगवद्ज्ञान, भगवद्ध्यान, भगवद्रस बढ़ता जायेगा ।

भोगी आदमी आँखोंवाला, पदवीधारी हो तो भी रागवान होकर बेईमान होने के कारण उसका इतना बुरा हाल हो जाता है कि कारागृह में पड़ जाता है । संसार का राग बेईमानी कराता है और भगवान में प्रीति ईमानदारी ले आती है। ईश्वरप्राप्ति की लगन तीव्र होने से 'श्रीमद्भगवद्गीता' में वर्णित २६ प्रकार की दिव्य सम्पदाएँ आने लगती हैं :

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

'भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञान के लिए ध्यानयोग में निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, इन्द्रियों का दमन, भगवान, देवता और गुरुजनों की पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मों का आचरण और वेद-शास्त्रों का पठन-पाठन तथा भगवान के नाम और गुणों का कीर्तन, स्वधर्मपालन के लिए कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियों के सहित अन्तःकरण की सरलता । मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवाले पर भी क्रोध का न होना, कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग, अन्तःकरण की उपरति अर्थात् चित्त की चंचलता का अभाव, किसीकी भी निन्दादि न करना, सब भूतप्राणियों में हेतुरहित दया, इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी उनमें आसक्ति का न होना, कोमलता, लोक और शास्त्र से विरुद्ध आचरण में लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव । तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर की शुद्धि तथा किसीमें भी शत्रुभाव का न होना और अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव - ये सब तो हे अर्जुन ! दैवी सम्पदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्षण हैं ।' **(गीता : १६.१-३)**

प्रश्न : सेवा-साधना का संगम कैसे हो ?

पूज्य बापूजी : वास्तव में सेवा किसे कहते हैं ? जिस कार्य में स्वार्थ, वाहवाही का उद्देश्य न हो उसका नाम है सेवा। वह कर्मयोग है। कर्मयोग भी एक साधना है ।

जप करते हैं तो भक्तियोग हो जाता है । ज्ञान सुनते-विचारते हैं तो ज्ञानयोग हो जाता है। अपने स्वार्थ का विचार छोड़कर दूसरों के हित में, वह भी भगवान और समाज को जोड़नेवाली सेवा, संत व समाज को जोड़नेवाली सेवा तो परम सेवा है; उस सेवा से कर्मयोग हो जाता है।

कर्मयोग भी साधना है, उपासनायोग भी

साधना है, ज्ञानयोग भी साधना है- यह समझ लेना चाहिए।

शबरी भीलन झाड़ू लगाती है, वह भी एक साधना है। मैं गुरुद्वार पर सब्जी खरीदकर लाता था, बर्तन माँजता था, चिट्ठियाँ पढ़ता तथा उनके उत्तर देता था। मैं शास्त्र पढ़ता और गुरुजी उस पर व्याख्या करते थे। ऐसा नहीं कि मैं दिन भर माला घुमाया करता था। माला का जो प्रतिदिन का नियम है वह पूरा कर लिया, सारा दिन माला नहीं घूमती, सारा दिन ध्यान-भजन नहीं होता। फिर भी प्रतिदिन कम-से-कम हजार बार भगवान का नाम अवश्य लेना चाहिए। हजार बार भगवान का नाम अर्थसहित जपने से अनर्थ से रक्षा होती है। भगवान का नाम जपने के बाद उसमें थोड़ा शांत हो जाओ। 'श्री नारायण स्तुति, भगवन्नाम-जप महिमा, निर्भय नाद, युवाधन सुरक्षा, पंचामृत' - ये पुस्तकें पढ़ें। उद्देश्य ऊँचा होने से सब ठीक होने लगता है। ईश्वरप्राप्ति का उद्देश्य होने से बेईमानी भी छूट जायेगी, कर्म से पलायनवादिता भी छूट जायेगी, लापरवाही भी छूट जायेगी।

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम।

मैनाक पर्वत उठ खड़ा हुआ, बोला : ''हनुमानजी ! आप थक गये होंगे, तनिक विश्राम कर लें।''

''नहीं-नहीं। भगवान के कार्य को पूरा किये बिना विश्राम कहाँ ?''

उद्देश्य अगर भगवान का कार्य है तो फिर सेवा में ईमानदारी होगी। जिनकी साधना में रुचि है वे सेवा भी ईमानदारी से करते हैं। इसलिए सेवा और साधना को आप अलग नहीं कर सकते। उन्नति हेतु सेवा व साधना दोनों आवश्यक हैं।

जिसके जीवन में साधना है उसके जीवन में सेवा का सद्गुण आ ही जाता है। जो सेवा तत्परता से करता है उसको साधना का रस सेवा से भी मिलता है और साधना में भी मन लगता है। ❑

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(गतांक से आगे)

प्रह्लादजी सर्व सम्पत्तियों व समस्त गुणों के आधार 'शील' की प्रतिमूर्ति थे। इससे सारा संसार उनके वशीभूत था।

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्।

'संसार में बन्धन तो अनेक प्रकार के हैं किंतु प्रेमरूपी रस्सी का बन्धन कुछ और ही है।'

प्रह्लादजी तीनों लोकों में देवताओं से भी बढ़कर पूजनीय बन गये थे। देवराज इन्द्र को यह सहन नहीं हुआ। वे उपाय हेतु अपने गुरु बृहस्पतिजी के पास गये व साष्टांग प्रणाम कर बोले : ''गुरुदेव ! मैं श्रेय (कल्याण का मार्ग) जानने की इच्छा से आया हूँ।''

परम कल्याणकारी एवं मोक्षप्रद आत्मा-परमात्मा के ज्ञान का उपदेश देते हुए बृहस्पतिजी ने इन्द्र से कहा : ''संसार में सभी प्राणियों के लिए मुक्ति का मार्ग ही सबसे अधिक श्रेय है।''

परंतु इन्द्र के मन में तो दूसरी ही बात थी, उन्होंने कहा : ''हे भगवन् ! इससे भी अधिक कल्याणकारी कोई दूसरा मार्ग है अथवा नहीं ?''

प्रज्ञावान बृहस्पतिजी जान गये कि इन्द्र अभी इस श्रेष्ठतम उपदेश के पात्र नहीं हैं। वे बोले : ''इस विषय का विशेष प्रतिपादन महर्षि शुक्राचार्य ही कर सकते हैं, आप उन्हींके पास जाइये।''

जिसकी बुद्धि पर स्वार्थ हावी हो जाता है उसे अपने हितैषी के कल्याणकारी वचनों से भी संतोष नहीं होता। ऐसे में वह मतिमंदता का शिकार हो जाता है। इन्द्र दैत्यगुरु शुक्राचार्यजी के पास गये जो त्रिकालज्ञ थे। उन्होंने इन्द्र को

उपदेश पाने हेतु प्रह्लादजी के पास भेजा।

इन्द्र ब्राह्मण के वेश में प्रह्लादजी के पास गये और कहा : ''राजन् ! मैं आपको इहलौकिक व पारलौकिक कल्याण के मार्ग का तत्त्वज्ञ समझता हूँ। आप मुझे इसके उपदेश की भिक्षा दें।''

प्रह्लादजी ने ब्राह्मण की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसी समय उनको ज्ञान-तत्त्व की शिक्षा दी। ब्राह्मण ने शिष्य-धर्म का सुन्दर ढंग से पालन कर प्रह्लादजी का हृदय जीत लिया।

प्रह्लादजी को प्रसन्न देख कपटवेशधारी इन्द्र ने उनसे पूछा : ''हे त्रैलोक्यनाथ ! आपने किस प्रकार तीनों लोकों के राज्य को प्राप्त किया है ? हे धर्मज्ञ ! जिस अलौकिक गुण के द्वारा, जिस अजेय शक्ति के द्वारा आपने इतना बड़ा प्रभुत्व प्राप्त किया है, कृपया उसका वर्णन कीजिये।''

प्रह्लादजी बोले : ''विप्रवर ! अपने प्रभुत्व का वास्तविक कारण तो मैं भी नहीं जानता किंतु जिस आचरण से मुझे प्रभुत्व प्राप्त करने में सहायता मिली है, वह आपको बताता हूँ।

मैंने ज्ञानी महापुरुषों व सदाचारी, वेदनिष्ठ ब्राह्मणों के प्रति हृदय में सदा आदर रखा है और अपनेको राजा समझकर भी उनकी निन्दा नहीं की है। वे शुद्धहृदय ज्ञानीजन मुझे नीति का उपदेश करते हैं व मैं उसीके अनुसार चलता हूँ, उनकी सदा विनम्रभाव से सेवा करता हूँ। मैं क्रोध व इन्द्रियों को वश में रखता हूँ। जैसे मधुमक्खियाँ अपने छत्ते में यत्न के साथ मधु इकट्ठा करती हैं, वैसे ज्ञानीजन मेरे ज्ञान-वृक्ष का अपने उपदेशामृत द्वारा सिंचन करते हैं। अपने गुरुदेव के कहे हुए शास्त्र के अनुसार कार्य करना ही पृथ्वी में अमृतस्वरूप है और वही ज्ञानोपदेश वस्तुतः मनुष्य का नेत्रस्वरूप है। इस समय अधिक कुछ न कहकर मैं आपसे केवल यही कहूँगा कि इहलौकिक और पारलौकिक श्रेय (कल्याण) की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है 'शील' और शीलप्राप्ति का उपाय है :

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत्प्रशस्यते ॥
यदन्येषां हितं न स्यादात्मनः कर्म पौरुषम्।
अपत्रपेत वा येन न तत्कुर्यात्कथञ्चन ॥
तत्तत्कर्म तथा कुर्याद्येन श्लाघ्येत संसदि।

'किसी प्राणी के प्रति द्रोह न रखना; मन, वचन व कर्म से कभी किसीका अनिष्ट न चाहना; सबके प्रति कृपापूर्ण दृष्टि रखना तथा दानशील होना – ये तीन गुण शील के समस्त गुणों में श्रेष्ठ हैं। अपना कोई काम या पुरुषार्थ जो दूसरे लोगों के लिए हितकर न हो और जिससे दूसरों के सामने लज्जित होना पड़े उसे कभी भी न करे। हे विप्र ! सदा ऐसे कार्य करने चाहिए जिनसे सभाओं में सज्जनों के बीच सम्मान प्राप्त हो।'

ब्राह्मण ! आपने शिष्य-धर्म का उत्तम पालन किया है, मैं प्रसन्न हूँ। जो चाहो माँग लो।''

कपटवेशधारी इन्द्र मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और बोले : ''राजन् ! यदि आप मेरी इच्छानुसार वर देना चाहते हैं तो कृपया दीजिये, मैंने अपने मन में वर माँग लिया है।''

प्रह्लादजी ने कहा : ''एवमस्तु।''

''मेरी इच्छा आपका शील लेने की है।''

प्रह्लादजी ने वचन पूरा किया एवं ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र सफल मनोरथ हो के चले गये।

इतने में प्रह्लादजी के शरीर से एक तेजोमय पुरुष छाया के रूप में प्रकट हुआ, जिसने अपना परिचय 'शील' कहकर दिया। वह अन्तर्धान हो देवलोक में जाकर इन्द्र के शरीर में प्रविष्ट हुआ। फिर शील के अनुगामी धर्म, सत्य, वृत्त (वेद व शास्त्र अनुसार आचार), बल और लक्ष्मी भी प्रह्लादजी को छोड़कर इन्द्र में प्रविष्ट हो गये।

प्रह्लादजी ने लक्ष्मीजी से यह जान लिया कि देवराज इन्द्र ने ही ब्राह्मणरूप में आकर उनका शील हर लिया है। प्रह्लादजी ने इसे भगवान का आशीर्वाद समझा और नैमिषारण्य के समीप एक सघन वन में जाकर भगवान श्रीविष्णु का प्रेमपूर्वक ध्यान-चिंतन करते हुए आनन्दमग्न रहने लगे। **(क्रमशः)** □

सत्संग से सँवरती है चिंतनधारा

- पूज्य बापूजी

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं ।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥

(रामचरित. सु.कां. : ३९.३)

वेद भी कहते हैं और पुराण भी कहते हैं कि सबके अंदर शुभ-अशुभ छुपा रहता है । संत-समागम, हरिकथा और हरि के नाम-जप से शुभ हिस्सा विकसित होता है तो अशुभ को पनपने का अवसर नहीं मिलता । अगर ये नहीं हैं तो अशुभ पनपता है और शुभ को अवसर नहीं मिलता । अशुभ का पनपना आसान है, शुभ को पनपाने में पुरुषार्थ आवश्यक है । जैसे - बरसात होती है तो फालतू घास, कँटीले वृक्ष अपने-आप उग जाते हैं लेकिन गुलाब के पौधे अपने-आप नहीं उगते । उनकी कलम लगानी पड़ती है तब गुलाब के फूल खिलते हैं ।

जो कीमती चीज है वह अपने-आप नहीं पनपती, उसके लिए धरती को संस्कारित करना पड़ता है । ऐसे ही हमारे अंतःकरण को सत्संग से संस्कारित किया जाता है ।

एक शिष्य ने पूछा : ''गुरुदेव ! कर्ण इतना ज्ञानी था, दोस्ती निभाने में अव्वल था और पांडवों का छठा भाई था, फिर भी वह मारा गया, परास्त हुआ और अर्जुन जीता - इसका क्या कारण है ?''

ऋषिवर ने कहा : ''कर्ण के चिंतन की धारा विपरीत थी । वह दुर्योधन का साथ दे रहा था इसलिए उसके चिंतन की धारा उसी प्रकार की थी और अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण का साथ ले रहा था, सत्संग ले रहा था । दुर्योधन के पास सैन्यबल था, राज्यबल था, कपटबल था किंतु अर्जुन ने भगवद्बल का आश्रय लिया था । जहाँ भगवद्बल और अपना पौरुष होता है वहाँ विजय होती है ।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

'हे राजन् ! जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है- ऐसा मेरा मत है ।' **(गीता : १८. ७८)**

संत कबीरजी के ये वचन सभीके जीवन में चरितार्थ हो जायें :

कबीरा माँगे माँगणा, प्रभु दीज्यो मोहे दोय ।
संत समागम हरिकथा, मो घर निशदिन होय ॥

हरि का ज्ञान नहीं होगा तो जगत के ज्ञान से भरा हुआ दिल-दिमाग उलझ जायेगा । जैसे कानों के द्वारा जगत का ज्ञान दिल-दिमाग में घुसता है, ऐसे ही भगवत्तत्त्व का ज्ञान घुसे तो वह जगत के प्रभाव को हटाकर अपना-सत् का प्रभाव जगायेगा, कुमति को हटाकर सुमति को जगायेगा, कुसंग को हटाकर सुसंग को ले आयेगा ।

धन्ना जाट को सत्संग मिल गया तो भगवान के दर्शन करने तक की योग्यता खिल गयी । शबरी भीलन शादी के फेरे फिर रही थी और पंडित ने कहा, 'सावधान !' शबरी ने देखा कि संसार में फँस जायेंगे । पल्ला खोल के चल दी । मतंग ऋषि के आश्रम में शबरी को सत्संग मिला । शबरी के खानदान में कोई कल्पना नहीं कर सकता कि एक भीलन इतनी प्रसिद्ध होगी कि इतने बड़े-बड़े संत भी उसकी गाथा गायेंगे । भगवान श्रीराम उसके बेर खायेंगे । शबरी में पूर्वजन्म में किये सत्संग के संस्कार छुपे थे । मतंग ऋषि के सम्पर्क से, साधना से शबरी के हृदय की भूमि जोती गयी तथा भगवत्प्राप्ति का बीज डाला गया और शबरी ने उसे सींचा । सीधा गणित है ।

रावण, कुंभकर्ण और विभीषण एक ही-पुलस्त्य ऋषि के कुल में पैदा हुए। कुंभकर्ण की अपनी चिंतन की धारा थी, रावण की अपनी चिंतन की धारा थी किंतु विभीषण की चिंतनधारा ऊँची थी तो ईश्वरप्राप्ति में वे सफल हो गये।

आपके माता-पिता ऊँचे चिंतनवाले हैं पर आपके चिंतन की धारा हलकी है तो परिणाम हलका आयेगा। इसलिए माता-पिता अच्छे हैं तो अच्छा है, कुटुम्ब अच्छा है तो अच्छा है, कुटुम्ब छोटी विचारधारावाला है तो भी फिक्र नहीं, आपके चिंतन की धारा अच्छी हो जाय, संग अच्छा हो जाय, बस।

आजकल के जो बच्चे हैं, नयी पीढ़ी है, उसकी चिंतन की धारा बहुत तुच्छ हो गयी है। हमारे बाप-दादा में जो सहनशक्ति, कार्यकुशलता और मजबूती थी, वह अपनेमें नहीं है और जो अपनेमें है वह अपने बेटे-बेटियों में नहीं पायी जाती। अभी जो पुराने लोग हैं - ८० साल के, ९० साल के देखे जाते हैं लेकिन आनेवाली पीढ़ी ८० साल का जीवन जीयेगी कि नहीं - यह बड़ा प्रश्न है। आजकल के बच्चे-बच्चियाँ चिंतन की धारा हलकी हो जाने से फास्टफूड आदि के गुलाम बन गये। इसलिए चिंतन की धारा ऊँची हो यह जरूरी है।

एक होता है सामाजिक चिंतन कि भाई ! सद्व्यवहार करें, सब ईश्वर के रूप हैं, अपने आत्मरूप हैं। सबसे प्रेम से बर्ताव करें। दूसरा है दैविक चिंतन और तीसरा है तात्त्विक चिंतन। तात्त्विक चिंतन करते-करते तत्त्वस्वरूप में टिक गये तो पार हो गये। तात्त्विक चिंतन निश्चिंतता ले आता है। तात्त्विक चिंतन किस प्रकार का होता है ?

एक है प्रकृति, दूसरा है पुरुष (परमात्मा)। एक है अध्यस्त (माया), दूसरा है अधिष्ठान (सर्वाधार ब्रह्म)। **राम ब्रह्म परमारथ रूपा।** **(रामचरित. अयो.कां. : ९२.४)** श्रीरामचन्द्रजी कैसे हैं ? परमार्थस्वरूप (परम वस्तु) परब्रह्म हैं।

ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा।
अकथ अनामय नाम न रूपा॥

'वैराग्यवान मुक्त योगी पुरुष नाम तथा रूप से रहित अनुपम, अवर्णनीय, अनामय ब्रह्मसुख का अनुभव करते हैं।' **(रामचरित. बा.कां. : २१.१)**

ब्रह्मसुख की प्राप्ति जब तक नहीं हुई तब तक कितना भी धन कमा लें, मजदूरी हाथ लगेगी सँभालने की। कितनी भी सत्ता पा लें किंतु मिथ्या शरीर के नाम का नाम होगा, हमें क्या मिल जायेगा ? आजकल तो लोग इसीमें लगे हैं कि 'मैं दुनिया में कुछ नाम कर जाऊँ, नाम कर जाऊँ...' लेकिन 'मैं क्या हूँ ?' इसको तो खोज लाला !

आपको क्या-क्या अनुभव होते हैं- इसका कोई महत्त्व नहीं है तात्त्विक जगत में। 'मेरे को कृष्ण के दर्शन हुए, मेरे को सपने में ऐसा दिखा, गुरुजी ऐसे दिखे, ऐसे शेषनाग दिखे...'- इसका तात्त्विक जगत में कोई ज्यादा मूल्य नहीं है। अनुभव क्या-क्या हुए इसका मूल्य नहीं है परंतु अनुभव किसको हुए उसको आपने खोजा तो वाह-वाह... ! धन्य हो आप ! अनुभव जिसको होते हैं वह 'मैं' कौन हूँ ?- यह तात्त्विक चिंतन है।

उपासना का फल क्या है ?

देवी-देवता को प्रकट करना महत्त्वपूर्ण नहीं है, दुश्चरित्र से चित्त उपराम हो जाय यह उपासना का फल है। विक्षेप के समय भी चित्त में समता, शांति बनी रहे यह उपासना का फल है।

...तो कुछ भी करके हमारी चित्तरूपी भूमि में सत्संग के बीज बोये जायें। सनक, सनंदन, सनत्कुमार और सनातन नामक चार जन्मजात सिद्धपुरुष थे। उनमें से तीन श्रोता बनते थे और एक वक्ता व ब्रह्मचर्चा करते, तात्त्विक चर्चा करते। श्रोता बनते तो नीचे बैठते। सत्संग में नीचे बैठने से अपनेमें हीनबुद्धि नहीं होती और ऊँचे बैठकर जो सत्संग करते हैं उनमें अहंबुद्धि नहीं होती - यह सत्संग की विशेषता है। जो ऊँचे बैठे हैं उन्हें 'मैं विशेष हूँ' और जो नीचे बैठे हैं उन्हें 'हम हीन हैं' ऐसी भ्रांति नहीं होती - भगवच्चर्चा का यह महत्त्वपूर्ण प्रसाद है। ❑

गीता की सर्वहितकारी विद्याएँ

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

'गीता' में मुख्य रूप से बारह विद्याएँ हैं :

१. शोक-निवृत्ति की विद्या :

बीती हुई बात को सच्चा मानकर बार-बार याद करके शोक क्यों करना ?

जो बीत गयी सो बीत गयी,
उस बात का पीछा कौन करे ।
जो तीर कमान से निकल गया,
उस तीर का पीछा कौन करे ॥

बीती हुई बात को याद करके लोग शोक में पड़ते हैं। शोक न करें ।

'गीता' में आता है :

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥

'हे अर्जुन ! तू न शोक करने योग्य मनुष्यों के लिए शोक करता है और पंडितों के जैसे वचनों को कहता है परंतु जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिए और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिए भी पंडितजन शोक नहीं करते।' (२.११)

२. कर्तव्य कर्म करने की विद्या :

आप कर्तव्य कर्म करो और फल ईश्वर के हवाले कर दो । फल की लोलुपता से कर्म करोगे तो आपकी योग्यता नपी-तुली हो जायेगी । आप योद्धा हैं तो मन लगाकर युद्ध करिये । हाँ, परिणाम का विचार करके युद्ध करिये कि इससे धर्म होगा कि अधर्म होगा, न्याय होगा कि अन्याय होगा ।

३. त्याग की विद्या :

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥

'मर्म को न जानकर किये हुए अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है। ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी सब कर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शांति होती है।' (गीता : १२.१२)

त्याग से आपके हृदय में निरन्तर परमात्मशांति रहेगी ।

४. भोजन करने की विद्या :

युद्ध के मैदान में भी भगवान स्वास्थ्य की बात नहीं भूलते हैं । भगवान ने कहा है :

'हे अर्जुन ! यह योग न तो बहुत खानेवाले का, न बिल्कुल न खानेवाले का, न बहुत शयन करने के स्वभाववाले का और न सदा जागनेवाले का ही सिद्ध होता है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

दुःखों का नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले का, कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करनेवाले का और यथायोग्य सोने तथा जागनेवाले का ही सिद्ध होता है।'

(गीता : ६.१६-१७)

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥

'आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाले, रसयुक्त, चिकने व स्थिर रहनेवाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय- ऐसे आहार अर्थात् भोजन करने के पदार्थ सात्त्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।' (गीता : १७.८)

इस प्रकार यथायोग्य, सात्त्विक आहार करने का संकेत किया गया है। शास्त्र कहते हैं : तृतीया को परवल की सब्जी खाओगे तो शत्रुओं की वृद्धि होगी । चतुर्थी को मूली खाओगे तो धन का नाश

हो जायेगा। अष्टमी को नारियल खाया तो बुद्धि कमजोर होगी। त्रयोदशी को बैंगन खाया तो पुत्र के सुख का, पुत्र के सान्निध्य का या पुत्र का ही नाश संभव है। अमावस्या, पूर्णिमा और रविवार को तिल का तेल अथवा तिल का उपयोग करोगे तो आपका गुस्सा बढ़ जायेगा, महिलाओं को मासिक स्राव अधिक होगा।

कार्तिक महीने में बैंगन, माघ में मूली और सूर्यास्त के बाद कोई भी तिलवाली चीज नहीं खानी चाहिए। इस प्रकार शास्त्र-विधान के अनुसार आहार-विहार करना चाहिए।

५. पाप न लगने की विद्या :

युद्ध जैसा क्रूर कर्म, घोर कर्म करने पर भी पाप न लगे; पितामह भीष्म को मारना कितना पापकर्म, गुरु द्रोणाचार्य की हत्या करने के लिए डट जाना कितना भारी पाप माना जायेगा लेकिन ऐसा करने पर भी पाप न लगे- ऐसी विद्या है 'गीता' में। कर्ताभाव से रहित हो सुख-दुःख आदि में समता रखकर, निष्काम भाव से शास्त्रानुसार कर्तव्य कर्म करो तो पाप नहीं लगता। स्वार्थरहित सामाजिक सुव्यवस्था के लिए युद्ध जैसा घोर कर्म भी पाप से बचा देता है।

६. विषय-सेवन की विद्या :

'गीता' (२.६२-६५) के अनुसार रागपूर्वक विषयों का चिंतन करनेमात्र से मनुष्य का पतन हो जाता है परंतु अपने वशीभूत की हुई राग-द्वेष रहित इन्द्रियों से विषयों का सेवन करने से प्रसन्नता की प्राप्ति होती है अर्थात् अंतःकरण निर्मल हो जाता है और सारे दुःखों का नाश हो जाता है। स्वच्छ अंतःकरणवाले पुरुष की बुद्धि बहुत जल्दी परमात्मा में स्थिर हो जाती है।

आप खाओ-पीयो, विषय-सेवन करो लेकिन आप बीमार न होओ, विषयों के गुलाम न होओ। 'गीता' उत्तम भोक्ता बनने की तरकीब देती है। वे तो अधम भोक्ता हैं जो भोग भोग के बीमार, एड्स के शिकार या मधुमेह के मरीज हो जायें।

भोग भोगें तो कैसे भोगें ? भोग भोगते समय आप साक्षित्व में आयें, आपकी ऊर्जा का नाश न हो। इस प्रकार उत्तम ढंग से भोग भोगने की विद्या भी 'गीता' में है।

७. भगवद् अर्पण विद्या :

शरीर, वाणी तथा मन से आप जो कुछ करें, उसे भगवान को अर्पित कर दें। चाहे सौ मन साबुन लगायें, कोयला काला-का-काला रह जायेगा लेकिन उसी कोयले को अग्नि में डाल दो तो चमक उठता है। ऐसे ही कर्म तो बंधन करता है लेकिन उसे भगवद् अर्पण करो तो तुम्हारा कर्म कर्मयोग हो जाता है, चमक जाता है। ठगी-बेईमानी के दुष्कर्म भगवद् अर्पण नहीं होते। सावधानी से सत्कर्म करना। जैसे- ईनाम सरकार को अर्पण कर सकते हैं लेकिन सजा सरकार को अर्पण नहीं कर सकते। भगवत् सुमिरन और कर्म को भगवद् अर्पण करने से जीवन भगवद्प्रसाद से भरपूर हो जाता है, भगवत् योग और भगवत् ज्ञान से संपन्न होने लगता है।

८. दान देने की विद्या :

'दान देना ही कर्तव्य है- ऐसे भाव से जो दान देश तथा काल और पात्र के प्राप्त होने पर उपकार न करनेवाले के प्रति दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।' **(गीता : १७.२०)**

आपके पास विशेष बुद्धि है या बल है तो दूसरों के हित में उसका दान करो। धनवान हों तो आपके पास जो धन है उसका पाँचवाँ हिस्सा अथवा दसवाँ हिस्सा सत्कर्म में लगाना ही चाहिए।

९. यज्ञ विद्या :

'गीता' (१७.११) में आता है कि फलेच्छारहित होकर यज्ञ करना ही कर्तव्य है - ऐसा जान के जो यज्ञ किया जाता है वह सात्त्विक होता है।

आहुति डालने से वातावरण शुद्ध होता है

एवं संकल्प दूर तक फैलता है लेकिन केवल यही यज्ञ नहीं है। भूखे को भोजन देना, प्यासे को पानी देना, अनजान व्यक्ति को रास्ता बताना भी यज्ञ है। अरे ! बच्चे को जन्म देना भी यज्ञ है। हमारे शास्त्रों में यह वर्णित है।

बच्चा पैदा करूँगी, वह मुझे सुख देगा- इस भावना से नहीं, ईश्वर की सृष्टि के संचालन में ईश्वर ने मुझे निमित्त बनाया- इस भाव से बच्चे को सुसंस्कार दिया, पालन-पोषण किया तो यह यज्ञकर्म हो गया।

१०. पूजन विद्या :

भगवान का, मंदिर में देवी-देवता का पूजन तो करते हैं लेकिन सास में भी वही भगवान छुपे हैं, जेठानी में, देवरानी में, गरीब-गुरबों में, संत-महात्मा में, अरे जर्रे-जर्रे में रामजी हैं, ठाकुरजी हैं, प्रभुजी हैं- **वासुदेवः सर्वम्...** यह व्यापक पूजन विद्या भी 'गीता' में है।

११. समता लाने की विद्या :

परिस्थितियाँ आयेंगी, बदल जायेंगी। कोई भी परिस्थिति आ जाय, अचानक कोई भी मुसीबत आ जाय तो उसको सहने और समझने के लिए तैयार बना देती है 'गीता'।

भगवान ने कहा है :

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

'हे धनंजय ! तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्यकर्मों को कर, समत्वभाव ही योग कहलाता है।' (गीता : २.४८)

१२. कर्मों को सत् बनाने की विद्या :

'गीता' भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करने के लिए कहती है। इससे कर्म सत्कर्म हो जाता है।

कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते। (१७.२७)

'उस परमात्मा के लिए किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक सत् - ऐसे कहा जाता है।' □

याद करो, तुम ऋषियों की संतानें हो

बीज बढ़िया हो पर उसे बढ़िया वातावरण, समुचित पोषण एवं सूर्य-प्रकाश न मिले तो उसका विकास नहीं हो पाता। ऐसे ही आज के भारत के नौनिहाल अपने मूल की ओर दृष्टि डालें तो उन्हें पता चलेगा कि हम महातेजस्वी ऋषियों की संतानें हैं परंतु पीढ़ी-दर-पीढ़ी हम अपनी गरिमा को भूलते गये एवं वासना, विकार, ऐहिक आकर्षण बढ़ानेवाले वातावरण से आकर्षित हुए तो हम पाश्चात्यों की नाईं अशांत, उद्विग्न, अनिद्रा के रोगी होते जायेंगे, तनावग्रस्त होते जायेंगे, रुग्ण होते जायेंगे। बीज को तो अपना पोषण जुटाने की इतनी स्वतंत्रता नहीं है क्योंकि वह वृक्ष-योनि है परंतु भगवान ने हमें अपने जीवन को किस पथ पर ले जाना है इसकी पूरी स्वतंत्रता दी है क्योंकि हम भगवान की श्रेष्ठतम कृति मनुष्य-योनि में हैं।

उत्थान-पतन के मार्गों को जानकर उत्थान के मार्ग में दृढ़ता से चलना चाहिए। मुख्य दो मार्ग हैं - भोगप्रधान भौतिकवाद का मार्ग या नास्तिकता का मार्ग तथा त्याग व हित प्रधान अध्यात्म का मार्ग या आस्तिकता का मार्ग।

पहला मार्ग पहले-पहले उच्छृंखलता का सुख दिखाता है पर बाद में उद्वेग, अशांति, दुःख व पीड़ाओं में धकेल देता है।

दूसरा पोषण व हित प्रधान मार्ग है जो 'दो, बाँटो और पोषित करो' ऐसी हितप्रधान घोषणा

करता है। जो दूसरों को सुख बाँटता है उसका अपना दुःख रहता नहीं क्योंकि उसके हृदय से नित्य नूतन आंतरिक 'औदार्य सुख' का झरना फूट निकलता है। इसलिए यह अध्यात्म का मार्ग महान उत्थान का मार्ग है।

विश्वशांति के लिए बड़े-बड़े देशों द्वारा आज जितने भी उपाय किये जा रहे हैं वे सब निरर्थक क्यों साबित हो रहे हैं ? सब दिशाओं में इतनी अशांति की ज्वालाएँ क्यों धधक रही हैं ? पाश्चात्य देशों के विद्वान भी अब इस समस्या पर विचार-मंथन के अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि हमारी भोगवादी, भौतिकवादी सभ्यताएँ विश्वमानव को सुख-शांति प्रदान करने में असफल साबित हुई हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं विचारक श्रीमती हड्सन घोषणा करती हैं : ''हमारी सभ्यता की दीवारें गिरन को हैं। उसकी बुनियादें डगमगा गयी हैं। न जाने यह पूरी इमारत कब धराशायी हो जाय... !''

समस्त विश्व के मनीषी अब जिस सभ्यता को आशा की एकमात्र किरण मानकर उस पर नजरें टिकाये बैठे हैं वह है – अपनी ऋषिप्रणीत प्राचीनतम भारतीय सभ्यता, सत्य सनातन सभ्यता जो अमिट है। कुछ समय के लिए इसके उज्ज्वल स्वरूप पर पर्तें जमी हुई महसूस हो सकती हैं, यह मिटती-सी लग सकती है परंतु यह सनातन है। इसके अभ्युत्थान का दायित्व स्वयं भगवान ने स्वीकार किया है। वे स्वयं संतों-महापुरुषों के रूप में नित्य इस कार्य में निमग्न रहते हैं एवं परिस्थिति विकट होने पर अवतार भी लेते हैं।

भोगवाद का मार्ग रावण का मार्ग है। रावण कहता है :

भुंक्ष्व भोगान् यथाकामं पिब भीरु रमस्व च।

'भीरु (डरी हुई सीते) ! इच्छानुसार भोगों को भोग। खा-पी और मौज से रमण कर।'

(वा. रामायण, सु.कां. : २०.२३)

जब इस मार्ग की अति हो जाती है तब भगवान स्वयं प्रकट होकर सत्य सनातन संस्कृति के संदेश का उद्घोष करते हैं :

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।

'दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है।'

(रामचरित. उ.कां. : ४०.१)

काजु हमार तासु हित होई।

'हमारा काम हो और उसका (शत्रु का) कल्याण हो।' **(रामचरित. लं.कां. : १६.४)**

इसलिए अपना मंगल चाहते हो तो अपने पुरखों के हितप्रधान, संयमप्रधान, स्नेह और सदाचार प्रधान, सत्यसुख के नजरियेवाला, अपने पूर्वजों का सत्य-शाश्वत सुख की दृष्टिवाला उद्देश्य रखो, अध्यात्म मार्ग का अनुसरण करो। मनु महाराज की कल्याणमयी आज्ञा है :

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥

'जिस मार्ग से बाप-दादा (पूर्वज) चले हैं, उन्हीं सत्पुरुषों के मार्ग से चलें। ऐसा करने से मनुष्य अधर्म से पीड़ित नहीं होता।'

(मनुस्मृति : ४.१७८)

वेद की हित भरी पुकार है :

जीवा स्थ जीव्यासम्।

'जीयो और जीने दो।' **(अथर्ववेद : १९.७.६९)**

सनातन संस्कृति की पवित्र प्रार्थना है :

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

'सभी सुखी हों, सभी नीरोगी रहें, सभी सबका मंगल देखें और किसीको भी किसी दुःख की प्राप्ति न हो।'

हे ऋषियों की संतानो ! चलोगे न अपने पूर्वज सत्पुरुषों के मार्ग पर ? ॐ... ॐ... हिम्मत ॐ... ॐ... साहस ॐ... ॐ... सद्भाव ॐ... ॐ... सबका मंगल ॐ...ॐ... सर्वेश्वर में शांति। □

करता है। जो दूसरों को सुख बाँटता है उसका अपना दुःख रहता नहीं क्योंकि उसके हृदय से नित्य नूतन आंतरिक 'औदार्य सुख' का झरना फूट निकलता है। इसलिए यह अध्यात्म का मार्ग महान उत्थान का मार्ग है।

विश्वशांति के लिए बड़े-बड़े देशों द्वारा आज जितने भी उपाय किये जा रहे हैं वे सब निरर्थक क्यों साबित हो रहे हैं ? सब दिशाओं में इतनी अशांति की ज्वालाएँ क्यों धधक रही हैं ? पाश्चात्य देशों के विद्वान भी अब इस समस्या पर विचार-मंथन के अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि हमारी भोगवादी, भौतिकवादी सभ्यताएँ विश्वमानव को सुख-शांति प्रदान करने में असफल साबित हुई हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक एवं विचारक श्रीमती हड्सन घोषणा करती हैं : ''हमारी सभ्यता की दीवारें गिरने को हैं। उसकी बुनियादें डगमगा गयी हैं। न जाने यह पूरी इमारत कब धराशायी हो जाय... !''

समस्त विश्व के मनीषी अब जिस सभ्यता को आशा की एकमात्र किरण मानकर उस पर नजरें टिकाये बैठे हैं वह है – अपनी ऋषिप्रणीत प्राचीनतम भारतीय सभ्यता, सत्य सनातन सभ्यता जो अमिट है। कुछ समय के लिए इसके उज्ज्वल स्वरूप पर पर्तें जमी हुईं महसूस हो सकती हैं, यह मिटती-सी लग सकती है परंतु यह सनातन है। इसके अभ्युत्थान का दायित्व स्वयं भगवान ने स्वीकार किया है। वे स्वयं संतों-महापुरुषों के रूप में नित्य इस कार्य में निमग्न रहते हैं एवं परिस्थिति विकट होने पर अवतार भी लेते हैं।

भोगवाद का मार्ग रावण का मार्ग है। रावण कहता है :

भुंक्ष्व भोगान् यथाकामं पिब भीरु रमस्व च।

'भीरु (डरी हुई सीते) ! इच्छानुसार भोगों को भोग। खा-पी और मौज से रमण कर।'

(वा. रामायण, सु.कां. : २०.२३)

जब इस मार्ग की अति हो जाती है तब भगवान स्वयं प्रकट होकर सत्य सनातन संस्कृति के संदेश का उद्घोष करते हैं :

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई।

'दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं है।'

(रामचरित. उ.कां. : ४०.१)

काजु हमार तासु हित होई।

'हमारा काम हो और उसका (शत्रु का) कल्याण हो।' **(रामचरित. लं.कां. : १६.४)**

इसलिए अपना मंगल चाहते हो तो अपने पुरखों के हितप्रधान, संयमप्रधान, स्नेह और सदाचार प्रधान, सत्यसुख के नजरियेवाला, अपने पूर्वजों का सत्य-शाश्वत सुख की दृष्टिवाला उद्देश्य रखो, अध्यात्म मार्ग का अनुसरण करो। मनु महाराज की कल्याणमयी आज्ञा है :

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते॥

'जिस मार्ग से बाप-दादा (पूर्वज) चले हैं, उन्हीं सत्पुरुषों के मार्ग से चलें। ऐसा करने से मनुष्य अधर्म से पीड़ित नहीं होता।'

(मनुस्मृति : ४.१७८)

वेद की हित भरी पुकार है :

जीवा स्थ जीव्यासम्।

'जीयो और जीने दो।' **(अथर्ववेद : १९.७.६९)**

सनातन संस्कृति की पवित्र प्रार्थना है :

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

'सभी सुखी हों, सभी नीरोगी रहें, सभी सबका मंगल देखें और किसीको भी किसी दुःख की प्राप्ति न हो।'

हे ऋषियों की संतानो ! चलोगे न अपने पूर्वज सत्पुरुषों के मार्ग पर ? ॐ... ॐ... हिम्मत ॐ... ॐ... साहस ॐ... ॐ... सद्भाव ॐ... ॐ... सबका मंगल ॐ...ॐ... सर्वेश्वर में शांति। ❐

प्रेम की भूख

- पूज्य बापूजी के सत्संग से

प्रेम ने ऐसा जादू मार दिया है कि सुबह से शाम तक लोग उसके पीछे दौड़ते हैं, जीवन से मौत तक पागल हुए जा रहे हैं । पागल किसने किया ? प्रेम ने । वह प्रेम कोयल में माधुर्य पैदा करता है । वह प्रेम बुलबुल के कंठ द्वारा पुकारता है । वही प्रेम धनवान को धन इकट्ठा करने में लगा देता है । वह प्रेम प्रेयसी की तरफ निहारने को लालायित कर देता है । जिसका धन में प्रेम है वह धन इकट्ठा करता है; जिसका कपड़ों में प्रेम है वह कपड़े ले आता है। मतलब, कपड़े नहीं चाहिए, प्रेम-प्रेम...

प्रेम नचाता है किसी-किसी ठिकाने, किसी-किसी दुकान पर, किन्हीं-किन्हीं जन्मों में या किन्हीं-किन्हीं चेष्टाओं में । इस प्रेम ने सबको दीवाना किया है । सत्ताधीश कुर्सी को प्रेम करते हैं। लोभी धन को प्रेम करते हैं । अहंकारी मान-बड़ाई को प्रेम करते हैं । प्रेम के अलग-अलग साधनों में प्रेम खोजा जाता है लेकिन मजे की बात है कि अपने सुखस्वरूप का बिम्ब उनमें दिखता है ।

साधन क्यों प्यारे लगते हैं ? क्योंकि अपनी बुद्धिवृत्ति में मान्यता होती है कि 'यह मिलेगा तब मैं सुखी होऊँगा ।' आईने को पकड़ रखते हो । क्यों ? क्योंकि तुम्हारा चेहरा दिखता है। ऐसे ही साधनों को पकड़ रखते हो । क्यों ? क्योंकि तुम्हारा प्रेम उनमें छलकता है ।

पहलवानों को कुश्ती में प्रेम होता है । व[illegible] से उनको सुख का आभास होता है । सुख त[illegible] अपनेमें है किंतु बुद्धिवृत्ति में है कि 'पहलवान बनूँग[illegible] मल्ल हो जाऊँगा ।... इसको हराऊँ तब सुख[illegible] होऊँगा ।...' इस प्रकार का हस्ताक्षर किया हुअ[illegible] है तो पहलवानी के आईने को पकड़ा । वकील [illegible] वकालत के आईने को पकड़ा । जोगी ने जोग के आईने को पकड़ा । लेकिन तुम्हारी बुद्धिवृत्ति के पीछे तुम्हारा ही वह अंतर्यामी प्रेमस्वरूप है, जिसने सारी दुनिया को पागल बनाया है । सारे विश्व को पागल बनाया है इस प्रेम ने ।

पक्षियों की उड़ान, बुलबुल का चहकना, कोयल का पिहकना, पपीहे की पुकार, स्त्री की नटखट चाल और मर्द की अजीजी - यह सारा-का-सारा प्रेम का ही तो विस्तार है । धन-सत्ता के पीछे मर मिटना - यह भी प्रेम का ही विस्तार है । जिसने जिस-जिस साधन को प्रेम किया है, उस-उस साधन से उसे प्रेमप्राप्ति का भ्रम होता है । हकीकत में प्रेमस्वरूप स्वयं है परंतु बुद्धिवृत्ति गुणों से आक्रांत हो गयी और फिर 'ऐसा करूँ तो सुखी होऊँगा, वैसा करूँ तो सुखी होऊँगा... यह पाऊँ तो सुखी होऊँगा...' इस प्रकार बाह्य साधनों की ओर आकृष्ट हो गये ।

तुमने भगवान को छप्पन भोग खिलाये, यह सबके हाथ की बात नहीं; भगवान को सुन्दर-सुन्दर अलंकार (वस्त्र) पहनाये, यह सबके वश की बात नहीं है और भगवान की पूजा घंटों भर की, यह सबके वश की बात नहीं है । भगवान को अच्छे-अच्छे हीरे-जवाहरात अर्पण करें, यह सबके वश की बात नहीं है और क्या भगवान ने ऐसा कहीं भी कहा है कि 'मैं गहनों का भूखा हूँ, मैं छप्पन भोग का भूखा हूँ', नहीं कहा । परंतु यह जरूर कहा है कि 'मैं प्यार का भूखा हूँ, मैं प्रेम का भूखा हूँ' और प्रेम तुम कर सकते हो । चाहे तुम

अमीर हो चाहे गरीब हो, चाहे रतलामवासी हो चाहे और कहीं के भी वासी हो किंतु तुम ईश्वर के वासी हो सकते हो, भगवान को प्रेम कर सकते हो। भगवान प्रेम के भूखे हैं और भगवान को प्रेम हर कोई कर सकता है। जब प्रेम करते हुए तुम कथा सुनते हो, प्रेम करते हुए धन्यवाद देते हो, प्रेम करते हुए दर्शन करते हो तो वह तुम्हारी बंदगी हो जाती है और बंदगी में अगर प्रेम नहीं है तो वह मजदूरी हो जायेगी।

बंदगी का था कसूर बंदा मुझे बना दिया।
मैं खुद से था बेखबर तभी तो सिर झुका दिया॥
वो थे न मुझसे दूर न मैं उनसे दूर था।
आता न था नजर तो नजर का कसूर था॥

शुद्ध चरित्र और शुद्ध नजरिया ऐसी निगाह पैदा कर देता है कि प्रियतम को आकाश-पाताल में खोजने का परिश्रम नहीं पड़ता है। पहले प्रियतम है बाद में तुम्हारा मन है, पहले वह प्यारा है बाद में तुम्हारी बुद्धि है, पहले वह प्यारा है बाद में तुम्हारी आँख देख सकती है, पहले वह प्यारा है बाद में तुम्हारे कान सुन सकते हैं, पहले वह प्यारा है बाद में तुम्हारे हाथ पकड़ सकते हैं-छोड़ सकते हैं... एकदम निकट है पर मिला नहीं। हम कितने चतुर आदमी हैं कि है एकदम निकट... उसके सिवाय तो एक श्वास भी नहीं ले सकते लेकिन आज तक उससे मुलाकात नहीं हुई, हम कितने चतुर हैं!

जो भगवान को प्रीतिपूर्वक भजता है वह उनके ज्ञान, आनन्द, माधुर्य, सामर्थ्य, मस्ती और हस्ती को अपनी ही समझता है। **देवो भूत्वा देवं यजेत्...** वह देवता बनकर देवता की पूजा करता है। भगवान बनकर भगवान को प्यार करता है। 'यह दे दे, वह दे दे...'- इस प्रकार भिखमंगा होकर वह नहीं भजता है। वे तो संसार के भिखारी हैं जो 'यह दे दे, वह दे दे...' करके भगवान से भी मिटनेवाली वस्तुएँ, परिस्थितियाँ माँगते हैं, भगवान से नश्वर लेकर परे हो जाते हैं और भगवान उन्हें टुकड़ा देकर परे कर देते हैं पर जो उनके प्यारे हैं उनके पीछे-पीछे घूमते हैं। वे प्रेम के भूखे हैं, माधुर्य के भूखे हैं।

तुम जो कुछ करते हो उसके पीछे तुम्हारे हृदय में क्या भावना है, प्रेमभाव है या नहीं और यदि है तो कितना है यह भगवान देखते हैं। भक्तिमती मैया विदुरानी ने भगवान श्रीकृष्ण को केले के छिलके खिलाये। प्रभु ने वह भोग बड़ी प्रसन्नता के साथ ग्रहण किया। बाह्य दृष्टि से तो वह भोजन अत्यंत साधारण था, इतना ही नहीं, वह उपयुक्त भी नहीं था पर प्रभु ने भोजन को नहीं देखा, भोजन करानेवाली माता का प्रेमभाव देखा।

इस प्रकार भगवान की भूख प्रेम की भूख है और उन्होंने मनुष्यमात्र को यह योग्यता दी है कि वह इसकी पूर्ति कर सके तथा अपने व्यापक प्रेमस्वरूप को जागृत कर सके। □

प्रेम की शालीनता

मैं जब बद्रीनाथ की यात्रा पर जाता तो राह में देखता कि पेड़ के नीचे साधु बैठे हैं। उनके पास कोई दूसरे साधु आ गये तो वे बोलेंगे : ''महाराज! आइये, आपका स्वागत है।''

उन दोनों में से कोई एक चल दे तो दूसरे साधु बोलेंगे : ''महाराज! जा रहे हैं? बैठते थोड़ी देर।''

''नहीं! अब जाना है।''

''ठीक है, फिर दर्शन देना।''

यह प्रेम की शालीनता है। जगह तो अपनी नहीं है फिर भी प्रेमवश एक-दूसरे का स्वागत, सम्मान, सत्कार! यह प्रेम की शालीनता बड़ी सुखदायी होती है।

- पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

यमगीता

श्री अग्निदेव कहते हैं : हे वसिष्ठजी ! 'यमगीता' यमराज के द्वारा नचिकेता के प्रति कही गयी थी । यह पढ़ने और सुननेवालों को भोग प्रदान करती है तथा मोक्ष की अभिलाषा रखनेवाले सत्पुरुषों को मोक्ष देनेवाली है ।

यमराज ने कहा :

आसनं शयनं यानं परिधानगृहादिकम् ।
वाञ्छत्यहोऽतिमोहेन सुस्थिरं स्वयमस्थिरः ॥

'अहो ! कितने आश्चर्य की बात है कि मनुष्य अत्यन्त मोह के कारण स्वयं अस्थिर चित्त होकर आसन, शय्या, वाहन, परिधान (पहनने के वस्त्र आदि) तथा गृह आदि भोगों को सुस्थिर मानकर प्राप्त करना चाहता है ।' **(अग्नि पुराण : ३८२.२)**

महर्षि कपिलजी ने कहा है : 'भोगों में आसक्ति का अभाव तथा सदा ही आत्मतत्त्व का चिन्तन- यह मनुष्यों के परम कल्याण का उपाय है ।' 'सर्वत्र समतापूर्ण दृष्टि तथा ममता और आसक्ति का न होना, यह मनुष्यों के परम कल्याण का साधन है'- यह आचार्य पंचशिख का उद्‌गार है । 'गर्भ से लेकर जन्म और बाल्य आदि वय तथा अवस्थाओं के स्वरूप को ठीक-ठीक समझना ही मनुष्यों के परम कल्याण का हेतु है'- यह श्री गंगाविष्णुजी का गान है । 'आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःख आदि-अंतवाले हैं अर्थात् ये उत्पन्न और नष्ट होते रहते हैं, अतः इन्हें क्षणिक समझकर धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिए, विचलित नहीं होना चाहिए- इस प्रकार इन दुःखों का प्रतिकार ही मनुष्यों के लिए परम कल्याण का साधन है' - यह महाराज जनक का मत है । 'जीवात्मा और परमात्मा वस्तुतः अभिन्न (एक) हैं । इनमें जो भेद की प्रतीति होती है उसका निवारण करना ही परम कल्याण का हेतु है'- यह भगवान ब्रह्माजी का सिद्धान्त है । महर्षि जैगीषव्यजी का कहना है कि 'ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद में प्रतिपादित जो कर्म हैं, उन्हें कर्तव्य समझकर अनासक्त भाव से करना श्रेय का साधन है ।' 'सब प्रकार की विधित्सा (कर्मारम्भ की आकांक्षा) का परित्याग आत्मा के सुख का साधन है, यही मनुष्यों के लिए परम श्रेय है' - यह महामुनि देवलजी का मत बताया गया है । 'कामनाओं के त्याग से विज्ञान (आत्मिक अनुभव), सुख, ब्रह्म एवं परम पद की प्राप्ति होती है । कामना रखनेवालों को आत्मज्ञान नहीं होता' - यह सनकादि मुनियों का सिद्धान्त है ।

दूसरे लोग कहते हैं कि प्रवृत्ति और निवृत्ति- दोनों प्रकार के कर्म करने चाहिए परंतु वास्तव में नैष्कर्म्य (आसक्ति एवं फलेच्छा रहित होना, अकर्ता भाव) ही ब्रह्म है; यही भगवान विष्णु का स्वरूप है- यही श्रेय का भी श्रेय है । जिस पुरुष को आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, वह संतों में श्रेष्ठ है; वह अविनाशी परब्रह्म विष्णु से कभी भेद को प्राप्त नहीं होता ।

नास्ति विष्णुसमं ध्येयं तपो नानशनात्परम् ।
नास्त्यारोग्यसमं धन्यं नास्ति गंगासमा सरित् ॥

'भगवान के समान कोई ध्येय नहीं है, उपवास से बढ़कर कोई तप नहीं है, आरोग्य के समान कोई बहुमूल्य वस्तु नहीं है और गंगाजी के समान कोई दूसरी नदी नहीं है ।'

(अग्नि पुराण : ३८२.१४)

भगवान को छोड़कर दूसरा कोई बान्धव नहीं है । 'नीचे-ऊपर, आगे, देह, इन्द्रिय, मन तथा मुख- सबमें और सर्वत्र भगवान श्रीहरि विराजमान

हैं।' - इस प्रकार भगवान का चिन्तन करते हुए जो प्राणों का परित्याग करता है, वह साक्षात् श्रीहरि के स्वरूप में मिल जाता है। वह जो सर्वत्र व्यापक ब्रह्म है, जिससे सबकी उत्पत्ति हुई है, जो सर्वस्वरूप है तथा यह सब कुछ जिसका आकार-विशेष है, जो इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं है, जिसका किसी नाम आदि के द्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता है, जो सुप्रतिष्ठित एवं सबसे परे है, उस पर-अपर ब्रह्म के रूप में साक्षात् भगवान ही सबके हृदय में विराजमान हैं। वे यज्ञ के स्वामी तथा यज्ञस्वरूप हैं। उन्हें कोई तो परब्रह्मरूप से प्राप्त करना चाहते हैं, कोई विष्णुरूप से, कोई शिवरूप से, कोई ब्रह्मा और ईश्वररूप से, कोई इन्द्रादि नामों से तथा कोई सूर्य, चन्द्रमा और कालरूप से उन्हें पाना चाहते हैं। ब्रह्मा से लेकर कीट तक सारे जगत को भगवान का ही स्वरूप कहते हैं। वे भगवान परब्रह्म परमात्मा हैं, जिनके पास पहुँच जाने पर (जिन्हें जान या पा लेने पर) फिर वहाँ से इस संसार में नहीं लौटना पड़ता। सुवर्ण-दान आदि बड़े-बड़े दान तथा पुण्य-तीर्थों में स्नान करने से, ध्यान लगाने, व्रत व पूजा करने से और धर्म की बातें सुनने एवं उनका पालन करने से उनकी प्राप्ति होती है।

आत्मा को 'रथी' समझो और शरीर को 'रथ'। बुद्धि को 'सारथी' जानो और मन को 'लगाम'। विवेकी पुरुष इन्द्रियों को 'घोड़े' कहते हैं और विषयों को उनके 'मार्ग' तथा शरीर, इन्द्रिय एवं मनसहित आत्मा को 'भोक्ता' कहते हैं। जो बुद्धिरूप सारथि अविवेकी होता है, जो अपने मनरूपी लगाम को कसकर नहीं रखता वह उत्तम पद को (परमात्मा को) नहीं प्राप्त होता, संसाररूपी गर्त में गिरता है। परंतु जो विवेकी होता है और मन को काबू में रखता है वह उस परम पद को प्राप्त होता है, जिससे वह फिर जन्म नहीं लेता। जो मनुष्य विवेकयुक्त बुद्धिरूप सारथी से सम्पन्न और मनरूपी लगाम को काबू में रखनेवाला होता है, वही संसाररूपी मार्ग को पार करता है, जहाँ भगवान का परम पद है। इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय पर हैं, विषयों से परे मन है, मन से परे बुद्धि है, बुद्धि से परे महत्तत्त्व है, महत्तत्त्व से परे अव्यक्त (मूलप्रकृति) है और उससे भी परे पुरुष (परमात्मा) है। पुरुष से परे कुछ भी नहीं है, वही सीमा है, वही परम गति है। सम्पूर्ण भूतों में छिपा हुआ यह आत्मा प्रकाश में नहीं आता। सूक्ष्मदर्शी पुरुष अपनी तीव्र एवं सूक्ष्म बुद्धि से ही उसे देख पाते हैं। विद्वान पुरुष वाणी को मन में और मन को विज्ञानमयी बुद्धि में लीन करे। इसी प्रकार बुद्धि को महत्तत्त्व में और महत्तत्त्व को शांत आत्मा में लीन करे।

जैसे घड़ा फूट जाने पर घड़े का आकाश महाकाश से अभिन्न (एक) हो जाता है, उसी प्रकार मुक्त जीव ब्रह्म के साथ एकीभाव को प्राप्त होता है- वह सत्स्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है। ज्ञान से ही जीव अपनेको ब्रह्म मानता है, अन्यथा नहीं। अज्ञान और उसके कार्यों से मुक्त होने पर जीव अजर-अमर हो जाता है।

(अग्नि पुराण, अध्याय ३८२ से संकलित) ☐

दुःस्वप्ननाशक मंत्र

'श्रीविष्णुसहस्रनाम, गजेन्द्रमोक्ष, दुर्गा सप्तशती' आदि का पाठ दुःस्वप्ननाशक होता है।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं दुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा।

इस मंत्र को पवित्र होकर १० बार जपने से दुःस्वप्न सुखप्रद हो जाता है।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीकृष्णजन्म खं., उत्तरार्ध : ८२.५२)

आसुरी वृत्तियों से बचाव का मंत्र

ॐ नमो नन्दीश्वराय।

रात्रि में सोते समय इस मंत्र का जप करने से भूत-प्रेत एवं आसुरी, मलिन वृत्तियों का भय नहीं रहता। ☐

हे साधक ! अपने दिल को खिलौनों से बचाना

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

ध्यान के क्षणों में सद्गुरु अपनी अंतःआवाज से शिष्य को कह रहे हैं :

हे मेरे वत्स ! जो कुछ बाहर दिखता है - पद-प्रतिष्ठा, आकर्षण-विकर्षण... किसी पर विश्वास न करो। ये तो पटाखे के अनार हैं, ये तो आतिशबाजी के फूल हैं। ये सदा न रहेंगे । बाह्य दबदबा सदा न रहेगा। बाह्य अमीरी सदा न रहेगी, गरीबी सदा न रहेगी । मित्रता सदा न रहेगी। तू उस परम मित्र से मिल ले । तू भीतर के परम राज्य को पा लेना। तू अपने उस अन्तर्यामी में स्थित रह । सम, शान्त, नित्य नारायणस्वरूप की स्मृति कर, बस । कहीं आना-जाना नहीं है, श्रमसाध्य नहीं है । कहीं बाहर के आकर्षणों में अपनेको उलझा मत देना। अपनेको बाहर की स्तुति और निन्दा का खिलौना मत बना लेना। बाहर की सफलता और असफलता की गेंद अपनेको न बना लेना। तू तो अपनेको ऐसा बनाना कि तेरी इंतजारी होती रहे उस दिलबर के द्वार पर। तू अपने चित्त को ऐसा बना।

तू तेरा उर आँगन दे दे, मैं अमृत की वर्षा कर दूँ।
तू अपनी खुदी दे दे, मैं उसमें प्रभु के गीत भर दूँ॥

तू अपने चित्त को ऐसा रख कि तेरा चित्त बाहर की किसी चीज से प्रभावित न हो। तेरा चित्त बाहर के खिलौने भरने के लिए नहीं है, परमात्मा को भरने के लिए है। बाल की खाल उतारनेवाले लोग भले गणित के हिसाब करें। लोग भले वकालत में आगे बढ़ जायें, न्यायाधीश होने में आगे बढ़ जायें, नेता होने में आगे बढ़ जायें लेकिन तू तो राम को पाने में आगे बढ़ जाना। फिर सब आगे बढ़े हुए तेरी चरणरज की कृपा-प्रसादी के पात्र बन जायेंगे । वे तेरी मीठी नजर के प्यासे बन जायेंगे।

हे साधक ! हे शिष्य !! तू अपने दिल को तुच्छ खिलौनों से बचाकर थामे रखना । तेरा दिल तुच्छ खिलौनों के लिए नहीं है । तेरा दिल तो दिलबर का घर है। उस अन्तर्यामी दिलबर को प्रकट होने देना। जीवन का सूर्य ढल जाय उसके पहले ही तू अपना रास्ता तय कर लेना। आँखों का ओज चला जाय उसके पहले ही तू भीतर के ओज को पा लेना ।

कान बहरे हो जायें, बुढ़ापा आ जाय उसके पहले ही तू तत्त्वज्ञान सुन लेना। कुटुम्बी मुँह मोड़ लें, आँखों की रोशनी चली जाय, दाँत गिर जायें, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जायें, बाल सफेद हो जायें उसके पहले ही तू अपना दिल स्वच्छ करके परमात्म-तत्त्व का ज्ञान पा लेना। घुटने दुखने लगें, कुटुम्बी 'बूढ़ा कब मरे' इसकी प्रतीक्षा करने लगें उसके पहले तू अपने दिलबर को देख लेना।

मौत आये उसके पहले तू जीते-जी ममता छोड़कर अपने आपमें चले आना। तू कुटुम्बियों की सेवा करना लेकिन अपनी भी यह सच्ची सेवा कर लेना। ॐ... ॐ... ॐ...

श्मशान में पहुँचकर तुझ पर लकड़ियों का ढेर लग जाय, तेरे शरीर को चारों तरफ से आग घेर ले उसके पहले तू चारों तरफ विवेक की आँख से निहारना कि जगत का सब जलनेवाला है, सब मिटनेवाला है, सब चलाचली का मेला है। ऐसा समझकर तू समय बचाना। अमिट आत्मा आकाशरूप की प्रीति और स्मृति जगा लेना, अपने

कार्यों में से थोड़ा-थोड़ा समय बचाकर अपना महत्त्वपूर्ण कार्य-अन्तर्यामी परमात्मा के साथ अपनेको जोड़ते रहना, बेटे !

परमात्मा को सच्चे दिल से प्रार्थना कर ले :

हे मेरे मालिक ! दुनिया के हंगामों में कहीं मेरी आँख न लग जाय, हे मेरे प्रभु ! हे मेरे दयालु प्रभु ! दुनिया के कोलाहल में कहीं मेरा दिल फँस न जाय... हे मेरे दिलबर ! तू मेरे ख्वाबों में आना प्यार भरा पैगाम लिये।

ना कोई संगी साथी ऐसा जो जीवन में साथ चले।
इन मेलों में रहकर हम मजबूर अकेले चले॥

हम अकेले चलें उससे पहले तेरी मुलाकात हो जाय... ॐ शांतिः ! ॐ शांतिः !! ॐ शांतिः !!! ❑

मंत्र मंजूषा

एक ऐसा परम दिव्य मंत्र है जिसके सिद्ध हो जाने पर उससे अभिमंत्रित जल से ही कार्य सिद्ध हो जायेगा। यह जल ही समस्त रोगों की महा औषधि सिद्ध होगा। किसी भी प्रकार का कोई रोग हो, रोग की स्थिति को देखकर अभिमन्त्रित जल को तीन दिन, पाँच दिन, सात दिन अथवा ग्यारह दिन तक देने से सब रोग ठीक हो जाते हैं। तत्पश्चात् यह प्रयोग बन्द कर देना चाहिए। इसके लिए 'रं रुद्राण्यै नमः' मंत्र को छः मास पर्यन्त प्रतिदिन १०८ बार जप करके सिद्ध कर लेना चाहिए। इससे रोगों का विनाश होगा, शरीर की कान्ति बढ़ेगी और साधना अपने मार्ग पर दृढ़, बलवती होती हुई महामाया भगवती की कृपा से आगे बढ़ती चली जायेगी। शीघ्रातिशीघ्र अभीष्ट सिद्धि होगी।

(संदर्भ : सारस्वत कुण्डलिनी महायोग) ❑

ईश्वर की मधुर लीला

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

परमेश्वर की लीला बड़ी अनोखी है। हिरण्यकशिपु बोलता था : 'ईश्वर नहीं है। मैं ही ईश्वर हूँ और जगह कोई ईश्वर नहीं है।' जो किसी और ईश्वर को मानते थे उनके यज्ञों का उसने ध्वंस करा दिया। उस ईश्वर ने क्या लीला की कि हिरण्यकशिपु के घर में ही अपना परम भक्त उसके बेटे के रूप में दे दिया। हिरण्यकशिपु मानता था कि ईश्वर नहीं है, ईश्वर सर्वव्यापक नहीं है, जल-थल में, इधर-उधर नहीं है तो अंत में ईश्वर ने खम्भे में से प्रकट होकर दिखा दिया।

हिरण्यकशिपु के घर प्रह्लाद आ गये लेकिन प्रह्लाद के यहाँ विरोचन आया। 'भगवान नहीं है। है भगवान का बच्चा तो आ जाय मेरे सामने।'- ऐसा कहता हुआ विरोचन गदा लेकर त्रिलोकी में घूमा। अब भगवान सामने काहे को आयेंगे ? विरोचन के पास तो भगवान का पता ही नहीं था, अतः खोजते-खोजते थक गया कहीं भगवान मिले नहीं।

अरे ! जिसकी सत्ता से भगवान को खोज रहा है उधर देख ! उस सत्तास्वरूप का एक नाम 'गोविंद' भी है।

गोविंद बोलो हरि गोपाल बोलो,
राधारमण हरि गोपाल बोलो।

'गो' माने इन्द्रियाँ। जिस चैतन्य सत्ता से इन्द्रियाँ काम करती हैं - आँखें देखती हैं, नाक सूँघते हैं... उनमें सत्ता उस परमात्मा की है। उस परमात्मा को 'गोविंद' कहते हैं। विरोचन की इन्द्रियाँ, मन, पैर आदि जो चल रहे हैं उसी भगवान की सत्ता से चल रहे हैं।

रात्रि को इन्द्रियाँ मन में, मन बुद्धि में और बुद्धि परमात्मा में विश्रांति पाती है। इन्द्रियों की थकान मिटती है और पोषण प्राप्त होता है। रात्रि को इन्द्रियाँ उसमें विश्रांति पा के पुष्ट होती हैं इसलिए उस चैतन्य का नाम हो गया 'गोपाल'। जैसे गाय चरानेवाले को गोपाल बोलते हैं, ऐसे ही अंतर्यामी परमात्मा को भी गोपाल बोलते हैं।

राधारमण - राधा को उलटा दो तो हो जायेगा धारा। विचार की धारा, मन की धारा, बुद्धि की धारा जहाँ से उठती है और विचार, मन, बुद्धि की धाराएँ बदलती हैं फिर भी जो ज्यों-का-त्यों रहता है वह है राधारमण। धारा में जो चैतन्य रमण कर रहा है, वह तू-ही-तू है मेरे महाराज ! उसकी स्मृतिमात्र से पाप-ताप, अहंता और पद-प्रतिष्ठा का भूत शांत हो जायेगा।

गोविंद बोलो हरि गोपाल बोलो,
राधारमण हरि गोपाल बोलो।

वह अज्ञान हर लेगा, भय-शोक हर लेगा। विरोचन जिसको मारने के लिए ढूँढ़ रहा है वह 'गोविंद' है, वह 'गोपाल' है, वह 'राधारमण' है - यह है उसका पता। तो फिर गदा छोड़नी पड़ेगी और गोता मारने अंदर आना पड़ेगा।

उस विरोचन के घर में पुत्ररूप में ऐसा राजा बलि दे दिया कि उसने भगवान के आगे सब लुटा दिया और भगवान प्रकट भी हो गये। अंतर्यामी निराकार तो हैं लेकिन अपने भक्तों के कार्य करने के लिए जब चाहे साकार भी हो जाते हैं।

बिजनौर (उ.प्र.) के पंडित राम अवतार शर्मा ने करीब १००० पृष्ठ की एक किताब लिखी कि पुनर्जन्म नहीं होता है, पुनर्जन्म बकवास है, झूठी बात है। उसके लिए उसने विदेशी व स्वदेशी विद्वानों के ऐसे-ऐसे उद्धरण, ऐसे-ऐसे तर्क दिये, ऐसी लम्बी-चौड़ी व्याख्या की कि एक बड़ी किताब बन गयी। परंतु भगवान ने ऐसी थप्पड़ मारी कि उसीके घर का बालक जब तोतली भाषा बोलने के काबिल हुआ तो बात-बात में बोलने लगा कि "मैं तो फलाना भाई हूँ। पिछले जन्म में इसी उत्तर प्रदेश के इस गाँव के फलाने मुहल्ले में, फलानी गली में रहता था। मेरे बाप का यह नाम था। मेरा छोटा भाई अभी भी जिंदा है। मेरी मृत्यु ऐसे हो गयी और मेरे दो बेटे यह-यह काम कर रहे हैं। एक बेटी की शादी ऐसे हुई थी, जमाई ऐसा निकला।" आदि-आदि।

उससे पूछा : "अरे बेटा ! तू तो अभी चलने लायक नहीं हुआ है।"

"चलने लायक नहीं हूँ लेकिन पिछले जन्म में तो ऐसा था, अब तुम्हारे घर में जन्म हुआ है।"

पंडित राम अवतार शर्मा वह मुहल्ला और गली देखने गया। देख के आया तो सिर कूटा कि 'हाय-रे-हाय ! मैंने तो सारी अक्ल-होशियारी लगायी व इतना बड़ा ग्रंथ लिखा था और प्रभु ! तुमने मेरे ही घर में पुनर्जन्म का अनुभव करानेवाला बालक दे दिया !'

वाह प्रभु ! तुम्हारी क्या लीला है ! तुम्हारी क्या अठखेलियाँ हैं !

चुपचाप बैठने से कभी भगवान भी ऊब जाते हैं। **एकाकी न रमते।** इसलिए भगवान भी कुछ-न-कुछ चहल-पहल, कुछ-न-कुछ चरपरा करते रहते हैं। कुछ-न-कुछ लीला करते-कराते रहते हैं। ❑

पूरी डिक्शनरी याद कर विश्व रिकॉर्ड बनाया

'ऑक्सफोर्ड एडवांस लर्नर्स डिक्शनरी' (अंग्रेजी ६ संस्करण) के ८०,००० शब्दों को उनकी पृष्ठ संख्यासहित मैंने याद कर लिया, जो कि समस्त विश्व के लिए किसी चमत्कार से कम नहीं है। फलस्वरूप मेरा नाम 'लिम्का बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड्स' में दर्ज हो गया। यही नहीं 'जी' टीवी. पर दिखाये जानेवाले रियालिटी शो 'शाबाश इंडिया' में भी मैंने विश्व रिकार्ड बनाया। 'द वीक' पत्रिका के एक सर्वेक्षण में भी मेरा नाम २५ अद्‌भुत व्यक्तियों की सूची में है।

मुझे पूज्य गुरुदेव से मंत्रदीक्षा प्राप्त होना, 'भ्रामरी प्राणायाम' सीखने को मिलना तथा अपनी कमजोरी को ही महानता प्राप्त करने का साधन बनाने की प्रेरणा, कला, बल एवं उत्साह प्राप्त होना - यह सब तो गुरुदेव की अहैतुकी कृपा का ही चमत्कार है।

गुरुकृपा हि केवलं शिष्यस्य परं मंगलम्।

- विरेन्द्र मेहता, २४७२, वार्ड-१४, अर्जुन नगर, रोहतक (हरि.)। ❑

चित्तविश्रान्ति-प्रयोग

चित्त के उपशम के लिए एक प्रयोग खूब उपयुक्त है। किसी स्वच्छ एकान्त स्थान में कम्बल या टाट का आसन बिछाकर उस पर लेट जाओ। अब शरीर को खूब खींचो। पैर से सिर तक तमाम अंगों को कसरत मिल जाय, रग-रग को व्यायाम मिल जाय इस प्रकार शरीर को तनाव दो। जैसे कुत्ता या बिल्ली अपने शरीर को लम्बा करके खींचते हैं, वैसे दो-ढाई मिनट तक हाथ-पाँव को फैलाकर खूब खींचो। ऐसा कि जो नस-नाड़ियाँ काम न करती हों वे भी काम करने लग जायें।

दो-ढाई मिनट के बाद शरीर को खींचना छोड़ दो। सब अंगों को ढीला छोड़ दो। एकदम शान्त पड़े रहो। जिह्वा को मुख से बाहर निकालकर दाँतों से हलका-सा दबाओ। होंठों को बन्द रखो। दोनों हाथों की पहली उँगली अँगूठे से दबाओ। इस प्रकार ज्ञानमुद्रा में और विश्रान्ति मुद्रा में शवासन का प्रयोग करो। ज्ञानमुद्रा से ज्ञानतन्तुओं को पुष्टि मिलती है। थोड़ी देर के बाद अगर ज्ञानमुद्रा में और जिह्वा को बाहर रखने में परिश्रम जैसा महसूस हो तो दोनों को छोड़ दो। बिल्कुल स्वाभाविक आरामदायक स्थिति लगे इस प्रकार हाथों को घुटनों की ओर फैला दो। तन और मन को पूर्ण आराम करने दो।

अपने चित्त को किसी भी प्रकार के चिंतन की बेड़ियाँ न पहनाओ। चित्त को निश्चिंत कर दो। यदि कोई चिंतन होने लगे तो उस चिंतन को सावधान होकर निहारते जाओ। श्वासोच्छ्‌वास को निहारते जाओ। जैसे भगवान विष्णु क्षीरसागर में योगनिद्रा में विराजमान हैं, वैसे तुम भी अपने साधना के आसन पर योगनिद्रा में विश्रान्ति पाते जाओ। भावना करते जाओ कि हम आराम पा रहे हैं अपने अन्तर्यामी राम में।

इस समय आपका कोई कर्तव्य नहीं। कोई चिन्ता नहीं। आप पूर्ण आराम पा रहे हो। चित्त को विश्रान्ति के प्रसाद में पावन होने दो। यह चित्तविश्रान्ति-प्रयोग तमाम प्रकार के दोषों को दूर करने में सहाय देगा। इससे अच्छे-अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं और आरोग्य पुष्ट होता है।

- आश्रम की पुस्तक 'आत्मयोग' से ❑

बहुगुणी हरड़

रोगों को दूर कर शरीर को स्वस्थ रखनेवाली औषधियों में हरड़ (हर्रे) सर्वश्रेष्ठ है। यह त्रिदोषशामक, बुद्धि, आयु, बल व नेत्रज्योति वर्धक, उत्तम अग्निदीपक व संपूर्ण शरीर की शुद्धि करनेवाली है। विभिन्न प्रकार से उपयोग करने पर हरड़ सभी रोगों को हरती है।

चबाकर खायी हुई हरड़ अग्नि को बढ़ाती है। पीसकर खायी हुई हरड़ मल को बाहर निकालती है। पानी में उबालकर खाने से दस्त को रोकती है और घी में भूनकर खाने से त्रिदोषों का नाश करती है।

भोजन के पहले हरड़ चूसकर लेने से भूख बढ़ती है। भोजन के साथ खाने से बुद्धि, बल व पुष्टि में वृद्धि होती है। भोजन के बाद सेवन करने से अन्नपान-संबंधी दोषों को व आहार से उत्पन्न अवांछित वात, पित्त और कफ को तुरंत नष्ट कर देती है।

सेंधा नमक के साथ खाने से कफजन्य, मिश्री के साथ खाने से पित्तजन्य, घी के साथ खाने से वायुजन्य तथा गुड़ के साथ खाने से समस्त व्याधियों को दूर करने में मदद करती है।

हरड़ के सरल प्रयोग :

१. मस्तिष्क की दुर्बलता : १०० ग्राम हरड़ की छाल व २५० ग्राम धनिया को बारीक पीस लें। इसमें सममात्रा में पिसी हुई मिश्री मिलाकर रखें। ६-६ ग्राम चूर्ण सुबह-शाम पानी के साथ लेने से मस्तिष्क की दुर्बलता दूर होकर स्मरणशक्ति बढ़ती है। कब्ज दूर होकर आलस्य व सुस्ती मिटती है और सारा दिन चित्त प्रसन्न रहता है।

२. **अनन्तवात** (Trigeminal Neuralgia) : पीली हरड़ की छाल व धनिया १००-१०० ग्राम तथा ५० ग्राम मिश्री को अलग-अलग पीस के मिलायें। यह चूर्ण सुबह-शाम ६-६ ग्राम जल के साथ लेने से अनन्तवात की पीड़ा, जो अचानक कहीं माथे पर या कहीं कनपटी के पास होने लगती है, नष्ट हो जाती है। इसमें वातवर्धक पदार्थों का त्याग आवश्यक है।

३. २ ग्राम हरड़ व २ ग्राम सोंठ के काढ़े में १० से २० मि.ली. अरण्डी का तेल मिलाकर सुबह सूर्योदय के बाद लेने से गठिया, सायटिका, मुँह का लकवा व हर्निया में खूब लाभ होता है।

४. हरड़ चूर्ण गुड़ के साथ नियमित लेने से वातरक्त (Gout) जिसमें उँगलियाँ तथा हाथ-पैर के जोड़ों में सूजन व दर्द होता है, नष्ट हो जाता है। इसमें वायुशामक पदार्थों का सेवन आवश्यक है।

५. हरड़ वीर्यस्राव को रोकती है, अतः स्वप्नदोष में भी लाभदायी है।

६. उलटियाँ शुरू होने पर हरड़ का चूर्ण शहद के साथ चाटें। इससे दोष (रोग के कण) गुदामार्ग से निकल जाते हैं व उलटी शीघ्र बंद हो जाती है।

७. हरड़ चूर्ण गर्म जल के साथ लेने से हिचकी बंद हो जाती है।

८. हरड़ चूर्ण मुनक्के (८ से १०) के काढ़े के साथ लेने से अम्लपित्त में राहत मिलती है।

९. आँख आने पर तथा गुहेरी (आँख की पलक पर होनेवाली फुंसी) में पानी में हरड़ घिसकर नेत्रों की पलकों पर लेप करने से लाभ होता है।

१०. शरीर के किसी भी भाग में फोड़ा होने पर गोमूत्र में हरड़ घिसकर लेप करने से फोड़ा

पककर फूट जाता है, चीरने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

११. ३-४ ग्राम हरड़ के छिलकों का काढ़ा शहद के साथ पीने से गले का दर्द, टॉन्सिल्स तथा कंठ के रोगों में लाभ होता है।

१२. छोटी हरड़, सौंफ, अजवायन, मेथीदाना व काला नमक समभाग मिलाकर चूर्ण बनायें। १ से ३ ग्राम चूर्ण सुबह-शाम गर्म जल के साथ कुछ दिन लेने से कान का बहना बंद हो जाता है। इन दिनों में दही का सेवन न करें।

* हरड़ चूर्ण की सामान्य मात्रा १ से ३ ग्राम।

हरड़ रसायन योग

हरड़ (हर्रे) व गुड़ का सम्मिश्रण त्रिदोषशामक व शरीर को शुद्ध करनेवाला उत्तम रसायन योग है। इसके सेवन से अजीर्ण, अम्लपित्त, संग्रहणी, उदरशूल, अफरा, कब्ज आदि पेट के विकार दूर होते हैं। छाती व पेट में संचित कफ नष्ट होता है, जिसमें श्वास, खाँसी व गले के विविध रोगों में भी लाभ होता है। इसके नियमित सेवन से बवासीर, आमवात, वातरक्त (Gout), कमरदर्द, जीर्णज्वर, किडनी के रोग, पांडुरोग व यकृत विकारों में लाभ होता है। यह हृदय के लिए बलदायक व श्रमहर है।

विधि : १०० ग्राम गुड़ में थोड़ा-सा पानी मिलाकर गाढ़ी चासनी बना लें। इसमें १०० ग्राम बड़ी हरड़ का चूर्ण मिलाकर २-३ ग्राम की गोलियाँ बना लें। प्रतिदिन १ गोली चूसकर अथवा पानी से लें। यदि मोटा शरीर है तो ४ ग्राम भी ले सकते हैं। □

गुरमति नामु मेरा प्रान सखाई

मेरे मीत गुरदेव मोकउ राम नामु परगासि ॥
गुरमति नामु मेरा प्रान सखाई
हरि कीरति हमरी रहरासि ॥
हरिजन के वड भाग वडेरे
जिन हरि हरि सरधा हरि पिआस।
हरि हरि नामु मिलै त्रिपतासहि
मिलि संगति गुण परगासि ॥
जिन हरि हरि हरिरसु नामु न पाइआ
ते भागहीण जम पासि।
जो सतिगुर सरणि संगति नही आए
ध्रिगु जीवे ध्रिगु जीवासि ॥
जिन हरिजन सतिगुर संगति पाई
तिन धुरि मसतकि लिखिआ लिखासि।
धनु धंनु सतसंगति जितु हरिरसु पाइआ
मिलि जन नानक नामु परगासि ॥

'हे मेरे सच्चे सखा गुरुदेव ! मुझे उस हरिनाम के आलोक की आवश्यकता है, जो गुरु के मतानुसार हो। वही मेरे प्राणों का सही अवलम्ब है। उस परमात्मा का गुणगान ही मेरे जीवन की दिनचर्या है। (मैंने तो यही जाना है कि) जो हरि में श्रद्धा रखते हैं और जिन्हें हरिनाम की ही प्यास है, उन हरिजनों का अहोभाग्य है। वह हरिनाम मुझे भी प्रदान कीजिये, ताकि मेरी तृप्ति हो और मैं भी सत्संग में शामिल होकर उस परमात्मा के गुणों का प्रकाश हृदय में धारण कर सकूँ। जिन जीवों को परमात्मा के नाम का सच्चा रस उपलब्ध नहीं हुआ, वे भाग्यहीन हैं और यम के पंजों में हैं। जो सद्गुरु की शरण में नहीं आये उनके जीवन को धिक्कार है, उनका भावी जीवन भी व्यर्थ है।

जिन श्रद्धालुओं ने सद्गुरु की शरण पा ली है, उनके भाग्य में शुरू से ही कृपा का लेख मौजूद है। वे जीव धन्य हैं जिन्होंने हरि के जनों का दामन थामकर हरिरस को पा लिया है। गुरु नानकदेवजी कहते हैं कि जो जन हरि के सम्मुख समर्पित होते हैं, उन्हें नाम का आलोक प्राप्त होता है।' (श्री गुरुग्रन्थ साहिब) □

'वटसावित्री पूर्णिमा' पर पूर्णिमा दर्शन-सत्संग कार्यक्रम ३० जून व १ जुलाई को **गाजियाबाद (उ.प्र.)** में संपन्न हुआ। गुजरात, महाराष्ट्र व निकटस्थ राज्यों के हजारों पूर्णिमा व्रतधारी शिष्यों को ध्यान में रखते हुए दूरदर्शी पूज्य बापूजी ने १ जुलाई की शाम पूनम दर्शन-सत्संग कार्यक्रम अमदावाद आश्रम में भी दिया।

अथाह ज्ञान के भण्डार महर्षि वेदव्यासजी के पूजन-सम्मान में आयोजित व्यासपूर्णिमा दर्शन महापर्व 'व्यासपूर्णिमा' के पूर्व ही प्रारंभ हो जाता है।

यदि पूज्यश्री के विराट शिष्य-समुदाय एक ही स्थान पर श्रीगुरुपूर्णिमा मनाने एकत्र हों तो व्यवस्था तंत्र व प्रशासन की कितनी दयनीय स्थिति होगी, इसका अनुमान लगाकर व्यासपूर्णिमा दर्शन-सत्संग महापर्व को ५ चरणों में विभाजित किया गया।

१३ से १५ जुलाई के दौरान प्रथम चरण में राजस्थान की राजधानी जयपुर का चयन किया गया। राजस्थान व निकटस्थ स्थानों से आये शिष्य-समुदाय से स्थानीय सूरज मैदान तीनों दिन खचाखच भरा रहा। हरेक शिष्य की हार्दिक तमन्ना निकट से दर्शन की थी। सभी पूज्य गुरुदेव के निकट आ सकें यह तो संभव नहीं था। पूज्य बापूजी ही शिष्यों के बीच पहुँचे। वचनामृत का पान कर आप्लावित हुए हृदयों पर नयनामृत बरसने लगा और देखते-ही-देखते हाथों की अनगिनत जोड़ियाँ सहज ही जुड़कर वक्षस्थल पर पहुँच गयीं, शीतल अश्रु-सरिताएँ बह चलीं और मन, मति के पार परमात्म-सुख, परमात्म-प्रेम, परमात्म-विश्रांति में सराबोर हुए सभी साधक।

१७ व १८ जुलाई को पूज्यश्री **नागपुर (महा.)** पहुँचे। यहाँ एक ओर रेशम बाग मैदान के विशाल प्रांगण में कुंभ-सा दृश्य उपस्थित हुआ तो दूसरी ओर सारा नागपुर बापूमय नजर आया। पूज्य बापूजी की ज्ञान-भक्ति-योग मयी वाणी से सभी मंत्रमुग्ध हुए। सभीका एहसास था :

मानव-जन्म मिलने पर भी
इसकी महत्ता से अनभिज्ञ थे हम।
बापू ने ज्ञान-प्रसाद बाँटा
तब जाना कि इसकी महत्ता क्या है ॥

पूज्यश्री ने यहाँ भी पंडाल में भक्तों के बीच पहुँचकर उनकी निकट से दर्शन की आकांक्षा पूर्ण की। टीवी. चैनलों में व व्यासपीठ पर दूर से ही दर्शन कर संतुष्ट रहने को विवश श्रद्धालुओं का विराट समुदाय पूज्यश्री को पंडाल में अपने बीच पाकर आह्लादित हो उठा। रेशम बाग मैदान में जो भी आया बाग-बहार हो गया; खुशियों का खजाना, आध्यात्मिक आनंद, सूझबूझ, साहस और समता सँजोते, पृथ्वी पर के देव कहलानेवाले गुरुदेव के दर्शन, सत्संग की संपदा पाकर संपन्न हुआ। दोनों दिन भक्तों के विराट समुदाय के बीच स्वाभाविक शांति छायी रही। यह शांति पुलिस, कानून या डंडे के बल पर नहीं थी। विशाल भीड़ के आगे पुलिस व्यवस्था तो नाममात्र को ही थी। नित्य आत्मशांति में रमण करनेवाले प्रातःस्मरणीय पूज्य बापूजी की उपस्थिति से वातावरण में स्वाभाविक ही शांति-सौहार्द का संचार हो जाता है। पूज्य बापूजी ने गुरुपूर्णिमा प्रसाद के विषय में अपने आत्मीय अंदाज में कहा कि ''इस बार प्रसाद में लड्डू या बूँदी नहीं बल्कि 'औषध प्रसाद'

बँटेगा । यह योग त्रिदोषशामक और शरीर को शुद्ध करनेवाला उत्तम रसायन योग है ।'' उपस्थित सभी भक्तों तक इस प्रसाद के निःशुल्क वितरण की उत्तम व्यवस्था की गयी ।

श्रीगुरुपूर्णिमा महापर्व के २१ व २२ जुलाई के तृतीय चरण में पूज्य बापूजी **रोहिणी (दिल्ली)** पहुँचे । सत्संग के प्रथम सत्र में ही अनुयायियों का सैलाब उमड़ पड़ा । व्यवस्था तंत्र ने ज्ञानपिपासुओं की बढ़ती भीड़ को देखते हुए बैठक व्यवस्था में बढ़ोतरी की । परम पूज्य बापूजी ने ज्ञान, भक्ति व योग की सरिता बहाते हुए कई यौगिक प्रयोग बताये । ध्यान की अनेक विधियाँ बताकर भगवन्नामसहित प्राणायाम के प्रयोग कराये । पूज्यश्री ने बताया कि ''महर्षि वेदव्यासजी महाराज भगवन्नामसहित प्राणायाम करते व करवाते थे । इससे बुद्धि में प्रखरता आती है व अनेक दिव्य लाभ होते हैं । इन्द्रियलोलुपता, विषय-विकारों के आकर्षण में भले-भले तीसमारखाँ बिखर जाते हैं । इस फिसलाहट से बचने का अमोघ उपाय है- भगवन्नामसहित के प्राणायाम ।

भगवन्नामरहित के प्राणायाम धौंकनी की नाईं केवल अन्नमय शरीर को ही शुद्ध करते हैं लेकिन भगवन्नामसहित के प्राणायाम पाँचों शरीरों को शुद्ध करते हैं । जिससे स्वास्थ्य-लाभ के साथ-साथ प्रेमाभक्ति, ज्ञानप्रकाश व ब्रह्मानंद की प्राप्ति सुलभ हो जाती है ।''

परिवार में सुख-शांति बनाये रखने की नसीहत देते हुए पूज्यश्री ने कहा कि ''मेरे मन का ही हो, अन्य लोग मेरे कहने में चलें - यह प्रवृत्ति घर-घर में, समाज में उपद्रव का मूल कारण है । अगर अपने मन का होता रहेगा तो आदत बिगड़ जायेगी, अहंता बढ़ जायेगी, नारकीय योनियों में जाना पड़ेगा । धर्म-मर्यादा और अपने सामर्थ्य के अनुरूप दूसरों के मन का कर लो; इससे अपने मन की वासना मिटती जायेगी । अपनी आसापूर्ति नहीं, औरों की आसापूर्ति आसारामतत्त्व में पहुँचा देगी । कितना सरल उपाय है !

मेरी हो सो जल जाय, तेरी हो सो रह जाय ।

मेरे मन की इच्छाएँ-वासनाएँ जल जायें और प्रभु के संविधान का हो जाय । प्रभु का संविधान है- बदलनेवाले संसार में मरनेवाले शरीर से शाश्वत सुख को, शाश्वत स्वरूप के ज्ञान को पाकर जहाँ मौत की दाल नहीं गलती ऐसे उस अखंड मुक्त स्वभाव को पा लो, जान लो ।

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति ।
अमृतो भवति तृप्तो भवति ॥
स तरति स तरति, स लोकांस्तारयति ॥

'जिसको प्राप्त कर व्यक्ति सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है, तृप्त हो जाता है । वह तर जाता है और लोकों को भी तार देता है ।'

(नारदभक्तिदर्शन : सूत्र ४ व ५०)

प्रभु का यह संविधान है -

आपि जपहु अवरा नामु जपावहु ।
सुनत कहत रहत गति पावहु ।

'तू प्रभु का नाम स्वयं जप और दूसरों को जपने के लिए प्रेरित कर । नाम सुनते, कहते और पवित्र आचरण से रहते हुए उच्च अवस्था बन जायेगी ।' **(सुखमनी साहिब)**

आप परम पद पा लो यह संविधान है ईश्वर का ।

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं ।
मोह मूल परमारथु नाहीं ॥

'(घर, परिवार, धन, स्वर्ग, नरक आदि) जो देखने, सुनने और मन के अंदर विचारने में आते हैं, इन सबका मूल अज्ञान ही है । परमार्थतः ये नहीं हैं ।' **(श्रीरामचरित. अयो. कां. : ९१.४)**

आप परमार्थ को पा लो, परम अर्थ को पा लो यह संविधान है ।''

प्राचीनकाल से श्रीगुरुपूर्णिमा को शिष्यवृंद अपने सद्गुरु के समीप जाकर दर्शन-पूजन-

सत्संग लाभ प्राप्त करते थे और कृतार्थ होते थे। परंतु इस काल में करुणासिंधु पूज्य बापूजी अपने विराट शिष्य-समुदाय की कठिनाई कम करने के लिए अपने कष्टों की परवाह न करते हुए दिल्ली में सत्संग-दर्शन का लाभ देकर **इंदौर (म.प्र.)** पहुँचे।

स्थानीय दशहरा मैदान (इंदौर) में २४-२५ जुलाई को २ दिवसीय गुरुपूर्णिमा महोत्सव के लिए पूज्य बापूजी का नगर आगमन २३ जुलाई को हुआ। ४ वर्ष बाद इन्दौर पधारे पूज्यश्री की विमानतल पर आत्मीय अगवानी की गयी। पूज्यश्री विमानतल से सीधे अपनी कुटिया पर गये, जहाँ सोमवार को एकान्त में ही रहे।

२४ जुलाई को श्री सक्खर पंचायत द्वारा पारमार्थिक न्यास के माध्यम से निर्मित धर्मशाला का उद्घाटन सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्मवेत्ता पूज्य बापूजी के करकमलों से हुआ।

अल्प समय में आयोजित वृहद् आयोजन के लिए ६ एकड़ भूमि पर निर्मित विशाल पंडाल में लाखों लोगों के बैठने की व्यवस्था की गयी। ६ मेगा विजुअल स्क्रीन द्वारा पंडाल में दूर-दूर बैठे श्रद्धालुओं ने संतदर्शन व गुरुवाणी का लाभ लिया। सत्संग पंडाल के पास ही भोजन-प्रसाद के लिए अलग से पंडाल बनाया गया, जिसमें हजारों श्रद्धालुओं ने एक साथ बैठकर भोजन लिया। करीब ७५,००० वाहनों के लिए सुनियोजित पार्किंग व्यवस्था भी की गयी। रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड तथा प्रमुख चौराहों से सत्संग स्थल तक लाने-ले जाने की सुन्दर व्यवस्था स्थानीय समिति द्वारा की गयी।

३-४ दिन के अल्प समय में ही की गयी सुंदर व सुनियोजित व्यवस्था से सभी संतुष्ट नजर आये।

पहले ही दिन विशाल पंडाल भक्तों की विशाल उपस्थिति से नन्हा हो गया। समिति ने तत्परतापूर्वक तुरन्त बैठक व्यवस्था में विस्तार कार्य प्रारंभ किया। खचाखच भरे विशाल पंडाल में लाखों श्रद्धालुओं ने मंत्रमुग्ध होकर पूज्यपाद बापूजी की अमृतवाणी का रसपान किया। यहाँ भी पूज्यश्री पंडाल में भक्तों के बीच पहुँचे। भक्तवृंद भगवद्स्वरूप गुरुवर की अमृतवर्षी, निर्दोष प्रेमवर्षी निगाहों से निहाल हुए।

चतुर्मास में आध्यात्मिक जीवन जीने की कला सिखाते हुए पूज्यश्री ने कहा कि ''चतुर्मास साधकों, भक्तों, उपासकों के लिए सुवर्ण काल है। इस समयावधि में जो इन्द्रिय संयम, सदाचार, ब्रह्मचर्य का, व्रत, नियम का पालन किया जाता है वह अक्षय फलदायी होता है। चतुर्मास में कोई शुभ नियम अवश्य लेना चाहिए।''

दूसरे दिन के दर्शन-सत्संग में इन्द्र देवता ने पंडाल में उपस्थित लाखों श्रद्धालुओं की परीक्षा लेने में कोई कसर नहीं छोड़ी, जमकर बरखा बरसायी। लेकिन भक्तवृंद भी पक्के निकले- जमे रहे, पूज्य गुरुवर के आत्मस्पर्शी अमृतवचनों के रसपान में मग्न रहे। बापू के लाखों दीवानों के बीच लोक निर्माण व ऊर्जा मंत्री (म.प्र. शासन) श्री कैलाश विजयवर्गीय एवं दैनिक जागरण के मालिक श्री मदनमोहन गुप्त (दोनों सपरिवार) व और भी कई विधायक, सांसद तथा गणमान्य लोग भी इन्द्रदेव की कठिन परीक्षा में खरे उतरे। ❐

* 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्यता क्रमांक/रसीद-क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा। * नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।

'नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ...' कीर्तन की तुमुल ध्वनि द्वारा वातावरण को पावन बनाते हुए व 'ऋषि प्रसाद' के ज्ञान को जन-जन तक पहुँचाते हुए उरण जि. नवी मुंबई (महा.) तथा मालेगाँव जि. नासिक (महा.) के सेवादार।

आश्रम संचालित 'बाल संस्कार केन्द्र' द्वारा धनबाद (झारखंड) के 'बाल सुधार गृह' में संस्कार सिंचन कार्यक्रम किया गया तथा बड़ौदा (गुज.) की साधिकाओं द्वारा अस्पतालों में फल व अन्य खाद्य-सामग्री वितरित की गयी।

अनगुल (उड़ीसा) के जेल में कैदियों के बीच सत्साहित्य, रामनाम लेखन पुस्तिका व पेन का वितरण किया गया तथा मंगरुलपीर जि. वाशिम (महा.) के 'विद्यार्थी उज्ज्वल भविष्य निर्माण शिविर' में स्मृतिशक्ति को बढ़ाने के गुर सिखाये गये।
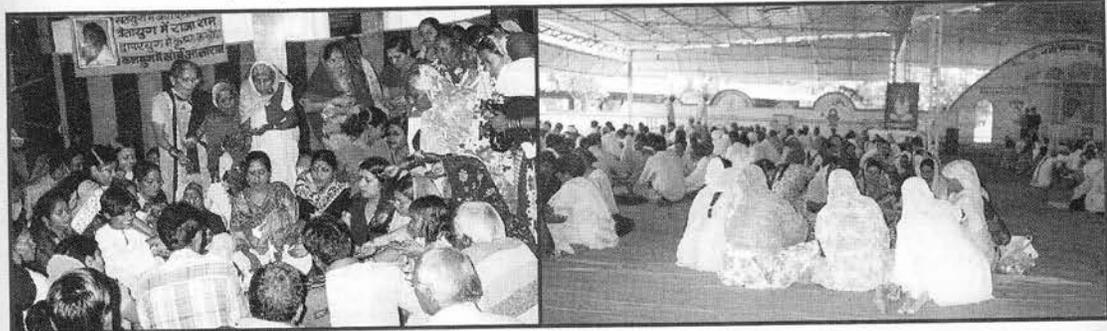
विश्व-कल्याण व वातावरण-शुद्धि हेतु बाँदा (उ.प्र.) तथा भोपाल (म.प्र.) के साधकों द्वारा सामूहिक हवन।

पूज्य बापूजी के सत्संग की नयी १२ सी.डी.

पूज्य बापूजी के लोक-मांगल्यकारी प्रवचन अर्थात् लौकिक-आध्यात्मिक उन्नति की कुंजियों, महापुरुषों के प्रेरक प्रसंगों, शास्त्रीय सूत्रों आदि का अद्भुत संगम।

1 August 2007
RNP. NO. GAMC 1132/2006-08
WPP LIC NO. GUJ-207/2006-08
RNI NO. 48873/91
DL(C)-01/1130/2006/08
WPP LIC NO.U(C)-232/2006/08
G2/MH/MR-NW-57/2006-08
WPP LIC NO. MH/MR/14/07
'D' NO. MH/MR/TECH-47/4/07

जिनमें हैं...

ध्यान की गहराइयों में जाने का सुगम उपाय।
आपकी समस्याओं के समाधान की बेजोड़ युक्ति।
मरने के बाद नहीं, जीते-जी मुक्ति कैसे प्राप्त करें ?
दुःख, चिंताएँ क्यों होती हैं ? ऐसे समय में क्या करें ?

6 V.C.D. का मूल्य 210/- (डाकखर्च सहित रु. 250/-)   6 MP3 का मूल्य 300/- (डाकखर्च सहित रु. 340/-)

12 C.D.का मूल्य 510/- (डाक खर्च सहित रु. 565/-)

वी.पी.पी. की सुविधा नहीं है । डी.डी., मनीऑर्डर भेजते समय अपनी माँग एवं अपना नाम, पूरा पता, पिनकोड व फोन नं. अवश्य लिखें।
पता : कैसेट विभाग, संत श्री आसारामजी महिला उत्थान आश्रम, साबरमती, अमदावाद-३८०००५.